भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

COURSE CODE: M23HD05DC

POSTGRADUATE PROGRAMME
HINDI LANGUAGE AND LITERATURE

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

Vision

To increase access of potential learners of all categories to higher education, research and training, and ensure equity through delivery of high quality processes and outcomes fostering inclusive educational empowerment for social advancement.

Mission

To be benchmarked as a model for conservation and dissemination of knowledge and skill on blended and virtual mode in education, training and research for normal, continuing, and adult learners.

Pathway

Access and Quality define Equity.

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

Course Code: M23HD05DC

Semester-II

Discipline Core Course
MA Hindi Language and Literature
Self Learning Material

(with Model Question Paper Sets)

SGOU

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

Course Code: B23HD05DC
Semester - II
Discipline Core Course
MA Hindi Language and Literature

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from Sreenarayanaguru Open University. Printed and published on behalf of Sreenarayanaguru Open University by Registrar, SGOU, Kollam.

www.sgou.ac.in

ISBN 978-81-971189-3-7

9 788197 118937

DOCUMENTATION

Academic Committee

Dr. Jayachandran R.
Dr. P.G. Sasikala
Dr. R. Sethunath
Dr. B. Ashok
Dr. Pramod Kovvaprath
Dr. Jayakrishnan J.
Dr. Vijayakumar B.

Development of the content
Dr. Sudha T.

Review
Content : Dr. Veena J.
Format : Dr. I.G. Shibi
Linguistics : Dr. N. Shaji

Edit
Dr. Veena J.

Scrutiny
Christina Sherin Rose, Dr. Indu G. Das, Krishnapreethi A.R.

Co-ordination
Dr. I.G. Shibi and Team SLM

Design Control
Azeem Babu T.A.

Cover Design
Lisha S.

Production
September 2024

Copyright
© Sreenarayanaguru Open University 2024

YouTube

Message from Vice Chancellor

Dear learner,

I extend my heartfelt greetings and profound enthusiasm as I warmly welcome you to Sreenarayanaguru Open University. Established in September 2020 as a state-led endeavour to promote higher education through open and distance learning modes, our institution was shaped by the guiding principle that access and quality are the cornerstones of equity. We have firmly resolved to uphold the highest standards of education, setting the benchmark and charting the course.

The courses offered by the Sreenarayanaguru Open University aim to strike a quality balance, ensuring students are equipped for both personal growth and professional excellence. The University embraces the widely acclaimed "blended format," a practical framework that harmoniously integrates Self-Learning Materials, Classroom Counseling, and Virtual modes, fostering a dynamic and enriching experience for both learners and instructors.

The university aims to offer you an engaging and thought-provoking educational journey. The postgraduate programme in Hindi uniquely combines language study with literature. While the programme ensures learners earn credits in various areas of Hindi literature, it mainly aims to improve their ability to deeply understand how different literary forms relate to society. We have also made sure to introduce learners to the latest developments in Hindi literature.

Rest assured, the university's student support services will be at your disposal throughout your academic journey, readily available to address any concerns or grievances you may encounter. We encourage you to reach out to us freely regarding any matter about your academic programme. It is our sincere wish that you achieve the utmost success.

Regards,
Dr. Jagathy Raj V. P.

01-09-2024

Contents

BLOCK-01 भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास 1

इकाई : 1 भारतीय काव्यशास्त्र 2

इकाई : 2 साहित्य : स्वरूप विवेचन 8

इकाई : 3 रस सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य 18

इकाई : 4 रस निष्पत्ति और साधारणीकरण 24

BLOCK-02 भारतीय काव्य संप्रदाय 31

इकाई : 1 अलंकार संप्रदाय और उसके सिद्धांत 32

इकाई : 2 रीति संप्रदाय और उसके सिद्धांत 39

इकाई : 3 ध्वनि संप्रदाय और उसके सिद्धांत 46

इकाई : 4 वक्रोक्ति संप्रदाय और उसके सिद्धांत 53

इकाई : 5 औचित्य संप्रदाय और उसके सिद्धांत 60

BLOCK-03 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास 66

इकाई : 1 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास 67

इकाई : 2 अरस्तु के काव्य सिद्धांत 74

इकाई : 3 लोंजाइनस का औदात्य विवेचने 82

इकाई : 4 क्रोचे का अभिव्यंजनावाद, सहजानुभूति 91

BLOCK-04 पाश्चात्य काव्य सिद्धांत 97

इकाई : 1 आधुनिक आलोचना एवं मैथ्यू अर्नोल्ड 98

इकाई : 2 टि.एस. इलियट के काव्य सिद्धांत 104

इकाई : 3 आइ.ए. रिचार्डस के काव्य सिद्धांत 110

इकाई : 4 स्वच्छन्दतावादी कवि-समीक्षक-विलियम वड्सवर्थ, वड्सवर्थ-काव्य भाषा का सिद्धांत 116

इकाई : 5 यथार्थवाद, प्रतीकवाद एवं अस्तित्ववाद 122

Model Question Paper Sets 129

BLOCK-01

भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास

Block Content

Unit 1: भारतीय काव्यशास्त्र

Unit 2: साहित्य : स्वरूप विवेचन

Unit 3: रस सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य

Unit 4: रस निष्पत्ति और साधारणीकरण

इकाई : 1

भारतीय काव्यशास्त्र

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भारतीय काव्य-शास्त्र का इतिहास समझता है
- भारतीय काव्य-शास्त्र का विभिन्न काल समझता है
- काव्य शास्त्र संबंधी महत्वपूर्ण सिद्धांतों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- परंपरागत मतों की नवीन व्याख्याओं की परिचय पाता है

Background / पृष्ठभूमि

भारतीय साहित्य-शास्त्र का आरंभ सामान्यतः भरतमुनि के 'नाट्य-शास्त्र' (लगभग प्रथम शती ईस्वी) से माना जाता है। आचार्य भरत से लेकर अब तक के साहित्य-शास्त्र के इतिहास को हम सामान्यतः पाँच कालों में विभक्त कर सकते हैं- (1) स्थापना काल (पाँचवीं शती के अन्त तक), (2) नव अन्वेषण काल (छठी शती से ग्यारहवीं शती तक), (3) संशोधन काल (बारहवीं शती से सत्रहवीं शती तक), (4) पद्यानुवाद काल (सत्रहवीं शती से उन्नीसवीं शती के मध्य तक), (5) नवोत्थान काल (उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण से अब तक) इन पाँचों की उपलब्धियों पर यहाँ क्रमशः विचार किया जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

भारतीय काव्य-शास्त्र, नाट्य-शास्त्र, सर्वांगीण विवेचन, उत्पत्तिवाद, साधारणीकरण

Discussion / चर्चा

आचार्य भरत मुनि को भारतीय साहित्य-शास्त्र की स्थापना का मूल प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'नाट्य-शास्त्र' में नाट्य-कला का सर्वांगीण विवेचन करने के साथ-साथ नाटक से संबंधित अन्य कलाओं तथा काव्य के विभिन्न तत्वों पर भी प्रकाश डाला।

1.1.1 स्थापना काल

साहित्य-शास्त्र में आचार्य भरत मुनि की सबसे बड़ी देन रस-सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार साहित्य का लक्ष्य पाठक या श्रोता की भावनाओं को उद्वेलित करके उसे आनंद प्रदान करना है। इसी आनंद को साहित्य-शास्त्रीय शब्दावली में 'रस' कहते हैं। इस लक्ष्य की पूर्ति उसी स्थिति में संभव है जबकि साहित्य की सामग्री को किसी एक मूल भावना (या स्थायी भाव) से संबद्ध करके प्रस्तुत किया जाए। दूसरे शब्दों में, सारी रचना के केन्द्र में एक स्थायीभाव स्थित रहे। स्थायीभाव के विभिन्न अवयव तीन प्रकार के माने गए हैं- विभाव, अनुभाव, और संचारी भाव। वस्तुतः ये तीनों अवयव स्थायी भाव के ही घटक तत्व है

▶ आचार्य भरत मुनि की सबसे बड़ी देन रस-सिद्धांत है

तथा इन्हीं के माध्यम से स्थायीभाव प्रस्तुत होता है। इसी तथ्य को सूत्र रूप में प्रस्तुत करते हुए आचार्य भरत ने कहा 'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद् रस-निष्पत्तिः'। अर्थात् विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आचार्य भरत ने रस-सिद्धांत के रूप में एक अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत को प्रस्तुत किया जो आज भी प्रचलित एवं मान्य है।

1.1.2 नव अन्वेषणकाल

▶ भारतीय काव्य -शास्त्र का सर्वतोन्मुखी विकासकाल

भारतीय साहित्य-शास्त्र का सर्वतोन्मुखी विकास छठी शती से ग्यारहवीं शती तक हुआ। इस काल में भामह, दंडी, वामन, आनंदवर्धन एवं क्षेमेन्द्र जैसे मौलिक चिन्तक उत्पन्न हुए। उन्होंने साहित्य के नये-नये तत्वों का अन्वेषण करते हुए अनेक नवीन सिद्धांतों की स्थापना की। इसके बाद भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, राजशेखर, धनंजय, भामह, भोजराज आदि प्रतिभाशाली व्याख्याताओं का आविर्भाव हुआ। इन आचार्यों ने पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धांतों का विश्लेषण करते हुए भारतीय साहित्य को व्यापक एवं गंभीर रूप प्रदान किया। इस युग की प्रवृत्ति को यहाँ मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं- (1) नवीन सिद्धांतों की स्थापना और (2) नवीन व्याख्याएँ।

1.1.2.1 नवीन सिद्धांतों की स्थापना

▶ पाँचों सिद्धांतों में क्रमशः काव्य के पाँच पक्षों पर बल दिया गया

इस युग में साहित्य संबंधी पाँच नये महत्वपूर्ण सिद्धांतों की स्थापना हुई (1) अलंकार सिद्धांत (2) रीति सिद्धांत (3) ध्वनि सिद्धांत (4) वक्रोक्ति सिद्धांत और (5) औचित्य सिद्धांत। ये सिद्धांत पर्याप्त मौलिक है। इनमें से अधिकांश का प्रेरणा-स्रोत भरतमुनि का नाट्य-शास्त्र है। आचार्य भरत ने विभिन्न प्रसंगों में अलंकार, गुण-दोष, औचित्य आदि तत्वों की चर्चा गौण रूप से की थी, परवर्ती अलंकार, रीति एवं औचित्य संप्रदाय के प्रवर्तकों ने इसी चर्चा से संकेत पाकर स्वतंत्र एवं मौलिक सिद्धांतों की स्थापना की है। इन पाँचों सिद्धांतों में क्रमशः काव्य के पाँच पक्षों पर बल दिया गया है। अलंकार में काव्य शैली की बाह्य साज-सज्जा पर, रीति में काव्य के स्वाभाविक गुणों, जैसे-शुद्धता, संक्षिप्तता, स्पष्टता, नाद-सौंदर्य आदि पर, ध्वनि में उसके अर्थ की व्यंग्यात्मकता पर, वक्रोति में अर्थ की लाक्षणिकता पर और औचित्य में विषय और शैली के पारस्परिक संतुलन पर सर्वाधिक बल दिया गया है।

1.1.2.2 नवीन व्याख्याएँ

▶ भरत के रस सूत्र की नई व्याख्या करते हुए आचार्य भट्टलोल्लट ने 'उत्पत्तिवाद' की स्थापना की

इस युग में नवीन सिद्धांतों के प्रादुर्भाव के साथ साथ परंपरागत मतों की नवीन व्याख्याएँ भी हुईं। इस क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य आचार्य भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त का है। इन्होंने मुख्यतः रस सिद्धांत की नई व्याख्याएँ प्रस्तुत की। आचार्य भट्टलोल्लट ने भरत के रस सूत्र की नई व्याख्या करते हुए अपने 'उत्पत्तिवाद' की स्थापना की। भरत का रस सिद्धांत संयोजनवादी था। विभिन्न तत्वों के संयोजन से किसी वस्तु या कार्य की योजना होती है, उसी तरह विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोजन से रस-निष्पत्ति का कार्य होता है। भरत-सूत्र का 'संयोग' शब्द भी इसी तथ्य को सूचित करता है। भट्टलोल्लट ने इसके स्थान पर रस को विभावों से उत्पन्न, संचारी भावों से पुष्ट एवं अनुभावों से व्यक्त-सिद्ध करते हुए निष्पत्ति का अर्थ क्रमशः तीनों प्रसंगों में उत्पत्ति, पुष्टि एवं अभिव्यक्ति सिद्ध किया। इस प्रकार भट्टलोल्लट ने रस निष्पत्ति को यांत्रिक रचना व्यापार के स्थान पर क्रमिक विकासवादी रूप प्रदान किया, जो अधिक वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक है।

आचार्य शंकुक ने भट्टलोल्लट का खण्डन करते हुए 'अनुमितिवाद' की स्थापना की। उन्होंने

न्याय-शास्त्र के अनुमानवाद को आधार बनाते हुए रस की प्रत्यक्ष अनुभूति के स्थान पर उसकी अप्रत्यक्ष अनुमिति की संभावना को सिद्ध किया। इस दृष्टि से आचार्य शंकुक की सबसे बड़ी देन है कि उन्होंने पहली बार इस तथ्य का उद्घाटन किया कि रस लौकिक जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूतियों से भिन्न कोटि की अनुभूति है। दूसरे, उन्होंने स्थायीभाव और रस का भी अंतर स्पष्ट करने का प्रयास किया, किन्तु उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली।

▶ आचार्य शंकुक ने 'अनुमितिवाद' की स्थापना की

आचार्य भट्टनायक ने रस-निष्पत्ति की क्रिया को तीन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं-अभिधा (अर्थ-बोध), भावकत्व एवं भोजकत्व में विभाजित करते हुए साधारणीकरण के सिद्धांत की प्रतिष्ठा की। यद्यपि परवर्ती आचार्यों ने भट्टनायक की स्थापनाओं को निराधार सिद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु वे इसमें अधिक सफल नहीं हुए। आधुनिक साहित्य-शास्त्र एवं सौंदर्य -शास्त्र के नवीनतम अनुसंधानों से यह सिद्ध हो गया है कि भट्टनायक का मत बहुत महत्वपूर्ण है। आधुनिक युग में एक ओर आई.ए. रिचर्डस ने काव्यास्वादन की प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए ऐसी प्रक्रियाओं का विवेचन किया है, जो उपर्युक्त तीनों प्रक्रियाओं के अनुरूप है। सौंदर्य -शास्त्र के क्षेत्र में भाववादी चिंतकों ने इम्पैथी सिद्धांत की प्रतिष्ठा की है, जिसे भट्टनायक के शब्दों में 'साधारणीकरण' का सिद्धांत कह सकते हैं। इम्पैथी का अर्थ समानुभूति या साधारणीकरण भी होता है। भट्टनायक की देन का आधुनिक दृष्टि से भी बहुत महत्व है।

▶ आचार्य भट्टनायक ने साधारणीकरण की प्रतिष्ठा की

अभिनवगुप्त ने भट्टनायक की अनेक मान्यताओं का खण्डन करते हुए भी साधारणीकरण को स्वीकार किया है। किन्तु अब तक रस-निष्पत्ति के सभी व्याख्याताओं द्वारा काव्य के पाठक या श्रोता के व्यक्तित्व की उपेक्षा होती रही, किसी का भी ध्यान इस तथ्य की ओर नहीं गया कि रसानुभूति में काव्य-वस्तु के अतिरिक्त स्वयं पाठक का भी थोड़ा-बहुत योग-दान रहता है। अभिनवगुप्त ने इस ओर ध्यान देते हुए अभिव्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा की। उसके मतानुसार काव्यास्वादन से पाठक के हृदय में किसी नये तत्व की सृष्टि नहीं होती, अपितु उसकी जन्मजात वासनाएँ ही उद्वेलित होकर व्यक्त हो जाती है। ये वासनाएँ सभी प्राणियों में विद्यमान होती है। क्रोचे के अभिव्यक्तिवाद का संबंध मुख्यतः काव्य-रचयिता की सहजानुभूति से है जबकि अभिनवगुप्त का मत पाठक की सहज प्रवृत्तियों से संबद्ध है।

▶ अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद एक अत्यंत महत्वपूर्ण व्याख्या है

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग में नवीन सिद्धांतों की स्थापना एवं पुराने सिद्धांतों की नयी व्याख्या-इन दोनों ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य हुआ। वस्तुतः इस युग को हम भारतीय साहित्य-शास्त्र का स्वर्ण-युग कह सकते हैं। वैसे भी यह भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग माना जाता है।

▶ भारतीय साहित्य-शास्त्र का स्वर्ण-युग

1.1.3 संशोधन काल

इस काल में मम्मट, हेमचन्द्र, जयदेव, विश्वनाथ (13-14 वीं शती), भानुदत्त (13-14 वीं शती), जगन्नाथ आदि आचार्यों ने किसी नये सिद्धांत की स्थापना न करके पूर्व प्रचलित सिद्धांतों में कुछ संशोधन एवं समन्वय प्रस्तुत किया। वे किसी एक ही सिद्धांत से न बँधकर विभिन्न सिद्धांतों की उपलब्धियों को स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि इनके ग्रन्थों में रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि सभी को थोड़ा-बहुत स्थान प्राप्त हुआ है। वे किसी को कम महत्व देते हैं और किसी को अधिक। उनकी यह समन्वयवादिता किसी प्रौढ़ व्यापक एवं मौलिक दृष्टिकोण की सूचक नहीं है, अपितु सार संकलन की प्रवृत्ति की द्योतक है। इनमें

▶ नये सिद्धांत की स्थापना न करके पूर्व प्रचलित सिद्धांतों में कुछ संशोधन एवं समन्वय

अधिकांश आचार्यों में विवेचन की गंभीरता, विश्लेषण की सूक्ष्मता एवं निष्कर्षों की मौलिकता का अभाव है। इस दृष्टि से यह युग भारतीय साहित्य-शास्त्र की अवस्था का सूचक है।

1.1.4 पद्यानुवाद काल (17वी-19वीं शती)

▶ केशव, चिन्तामणि, कुलपति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाही आदि आचार्य पद्यबद्ध रीतिग्रन्थ लिखे

इस काल में संस्कृत का स्थान आधुनिक भाषाओं ने ले लिया था, अतः भारतीय साहित्य-शास्त्र भी अनेक प्रादेशिक भाषाओं में विभक्त हो गया। यहाँ हम केवल हिन्दी की दृष्टि से इसे पद्यानुवाद-काल कह सकते हैं, क्योंकि इस युग में केशव, चिन्तामणि, कुलपति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाही आदि आचार्यों का आगमन होता है। इन्होंने पद्यबद्ध रीतिग्रन्थ लिखे। इस क्षेत्र में शताधिक कवि अवतरित हुए।

1.1.5 नवोत्थान काल (19 वीं शती के अन्तिम चरण से अब तक)

इस काल को भी हम मुख्यतः तीन युगों में विभक्त कर सकते हैं-

(1) भारतेन्दु युग (1875-1925)

(2) शुक्ल युग (1926 -1940)

(3) शुक्लोत्तर युग (1941 से अब तक)।

▶ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के द्वारा परंपरागत साहित्य-शास्त्र की नयी व्याख्यान

प्रथम युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबंधु, श्यामसुन्दरदास आदि आते हैं जिन्होंने अपने कुल लेखों एवं पुस्तकों में साहित्य-सिद्धांतों का विवेचन किया। भारतेन्दु ने अपने 'नाटक' ग्रन्थ में नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए प्राचीन सिद्धांतों के नवीनीकरण या प्राचीन और नवीन के समन्वय पर बल दिया। उन्होंने भारतीय नाटकों के साथ यूरोपीय नाट कों की भी चर्चा करते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र के समन्वय की ओर संकेत किया। आगे चलकर अन्य विद्वानों ने भी भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-शास्त्र की सामग्री को हिन्दी गद्य में प्रस्तुत किया है। यद्यपि इनमें मौलिकता का अभाव है, किन्तु इन्होंने रीतिकालीन दृष्टिकोण, परंपरा और शैली को त्याग कर नये दृष्टिकोण और नयी शैली स्थापित किया। शुक्ल युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के द्वारा परंपरागत साहित्य-शास्त्र के नया रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने आधुनिक युग की परिवर्तित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्राचीन सिद्धांतों की निजी दृष्टि से व्याख्या की-विशेषतः रस-सिद्धांत की। इस क्षेत्र में उनकी देन महत्वपूर्ण है। उन्होंने आनंद वादी रस-सिद्धांत को नीतिवादिता से समन्वित करते हुए रस को दो कोटियाँ निर्धारित की हैं। जहाँ हमारा काव्य के आश्रय से तादात्म्य हो जाता है, यहाँ उच्चकोटि की रस-दशा प्राप्त होती है। अन्यथा नायक के दुष्चरित होने की स्थिति में-मध्यम कोटि की रसानुभूति होती है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

अनेक विद्वानों ने भारतीय साहित्य-शास्त्र के विभिन्न पक्षों एवं सिद्धांतों का विवेचन आधुनिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समय परंपरागत भारतीय साहित्य-शास्त्र अधिक विकसित एवं प्रौढ़ हो गया।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. भारतीय काव्य-शास्त्र के उद्‌भव काल के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास पर टिप्पणी लिखिए।
3. भारतीय काव्य-शास्त्र के विभिन्न काल समझाइए।
4. भारतीय काव्य-शास्त्र का स्वर्ण-युग किसे माना जाता है? क्यों?
5. भारतीय काव्य-शास्त्र में नवोत्थान काल की भूमिका क्या है?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

साहित्य : स्वरूप विवेचन

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- साहित्य का स्वरूप और विवेचन से जानकारी प्राप्त करता है
- साहित्य में कल्पना और विंब की भूमिका जानता है
- काव्य की मूल प्रेरणा और उसके प्रयोजन से परिचय प्राप्त होता है
- कविता के विभिन्न लक्षण, तत्व, भेद आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- काव्य का स्वरूप गुण, दोष आदि समझता है

Background / पृष्ठभूमि

'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए 'हिन्दी साहित्य-कोश' के रचयिताओं ने लिखा है "साहित्य = सहित। यत् प्रत्यय, साहित्य का अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव अर्थात् 'साथ होना'। इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र का नाम 'साहित्य' है।" पहले संस्कृत में 'साहित्य' के स्थान पर 'काव्य' शब्द का ही प्रयोग मिलता है। भामह, राजशेखर, कुन्तक, प्रभृति आचार्यों ने काव्य की परिभाषा करते हुए शब्द और अर्थ के सहभाव को ही काव्य बताया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

भारतीय काव्य-शास्त्र, नाट्य-शास्त्र, सर्वांगीण विवेचन, उत्पत्तिवाद, साधारणीकरण

Discussion / चर्चा

'साहित्य' शब्द का प्रचलन इस अर्थ में सातवीं- आठवीं शती से हुआ है। इससे पहले संस्कृत में 'साहित्य' के स्थान पर 'काव्य' शब्द का ही प्रयोग मिलता है। भामह, राजशेखर, कुन्तक, प्रभृति आचार्यों ने काव्य की परिभाषा करते हुए शब्द और अर्थ के सहभाव को ही काव्य बताया। आधुनिक युग में 'साहित्य' शब्द का प्रचलन अंग्रेजी के 'लिटरेचर' शब्द की भाँति दो अर्थों में होता है-व्यापक अर्थ में वह समस्त लिखित एवं मौखिक रचनाओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

1.2.1 परिभाषा

- साहित्य की विभिन्न परिभाषाएँ

भारतीय दृष्टि से साहित्य का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए हमारे अनेक प्राचीन और अर्वाचीन आचार्यों ने साहित्य की विभिन्न परिभाषाएँ, निश्चित की हैं। आचार्य भामह (छठी-सातवीं शती) ने अपने 'काव्यालंकार' में लिखा था- 'शब्द और अर्थ मिलाकर काव्य (साहित्य) होता है' तो दंडी के विचार से 'इष्ट अर्थ से विभूषित शब्द समूह ही काव्य-शरीर है।' इसी

प्रकार आचार्य वामन 'गुण तथा अलंकार से संस्कारित शब्दार्थ' को साहित्य मानते हैं तो राजशेखर के विचारानुसार 'गुण से युक्त वाक्य ही काव्य है।'

1.2.1.1 साहित्य में कल्पना और बिंब

▶ अप्रत्यक्ष में, प्रत्यक्ष को, अतीत को वर्तमान में, स्थूल को सूक्ष्म में और असुन्दर को सुन्दर में परिणत कर देने की क्षमता को मनोविज्ञान में 'कल्पना' के नाम से पुकारा जाता है

प्राचीन युग में साहित्य-मीमांसकों का ध्यान कल्पना-शक्ति की ओर बहुत कम गया था। कुछ विद्वानों ने कवि की रचना-शक्ति को अनुकरण की प्रक्रिया के रूप में ग्रहण करते हुए उसे मिथ्या जगत की मिथ्या अनुकृति घोषित कर दिया, तो दूसरे वर्ग ने काव्य-सृजन की प्रक्रिया को किसी दिव्य शक्ति या दैवी प्रेरणा पर आधारित मानकर कवि को ईश्वर का प्रतिनिधि सिद्ध कर दिया। वस्तुतः ये दोनों ही मत अतिवादी थे तथा वास्तविकता से दूर थे। काव्य-प्रतिभा न तो शुद्ध अनुकृति पर आधारित है, न ही उसमें कोई दैवी शक्ति है। वस्तुतः उसका मूलाधार कवि की उस मानसिक शक्ति में निहित है, जो कि अप्रत्यक्ष में, प्रत्यक्ष को, अतीत को वर्तमान में, स्थूल को सूक्ष्म में और असुन्दर को सुन्दर में परिणत कर देने की क्षमता से युक्त है।

1.2.1.2 कल्पना और बिम्ब

▶ 'बिम्ब' शब्द अंग्रेजी के 'इमेज' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जिसका अर्थ है- मूर्त रूप प्रदान करना

कल्पना साहित्य में कई कार्य करती है उनमें एक कार्य है सूक्ष्म विचार को स्थूल बिम्ब के रूप में प्रस्तुत करना। यद्यपि स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कल्पना को सर्वाधिक महत्व दिया, किन्तु परवर्ती युग में कल्पना की अपेक्षा बिम्ब को अधिक महत्व मिलने लगा। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी कविता में अनेक ऐसे आन्दोलनों का प्रवर्तन हुआ जो बिम्ब विधान को ही कवि-कर्म का लक्ष्य घोषित किया। वस्तुतः बिम्ब-विधान के समर्थकों ने एक प्रकार से 'बिम्बवाद' की ही स्थापना करते हुए बिम्ब की ऐसी विस्तृत एवं व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की। उनके अनुसार काव्य का महत्व बिम्ब में ही समाविष्ट हो जाता है। अलंकार, रीति, वक्रोक्ति एवं ध्वनि-सिद्धांत के प्रतिपादकों ने जो किया वही बिम्बवादी करने लगे।

1.2.1.3 काव्य की मूल प्रेरणा

▶ कवि को काव्य-विशेष की रचना में प्रवृत्त करनेवाले व्यक्ति, वस्तु, घटना या दृश्य ही प्रेरणा है

'प्रेरणा' का संबंध उस व्यक्ति, वस्तु, घटना या दृश्य से है, जो कवि को काव्य-विशेष की रचना में प्रवृत्त करता है, जबकि प्रयोजन से तात्पर्य काव्य-रचना के उद्देश्य या उससे प्राप्त होने वाले लाभ से है। 'प्रेरणा' से संबंधित विषय की स्थिति काव्य-रचना से पूर्व रहती है; जबकि 'प्रयोजन' से संबंध रखने वाला पदार्थ काव्य-रचना के अनंतर उपलब्ध होता है।

सबसे पूर्व हमें अपने कवियों के अनुभव से लाभ उठाना चाहिए। आदि कवि वाल्मीकि के मत में प्रत्यक्ष जीवन की घटनाओं से काव्य-रचना की प्रेरणा मिलती है और शोकानुभूतियों से काव्य रचना की प्रेरणा मिलती है।

▶ काव्य की प्रेरणा एक अनुभूत तथ्य है

अनेक पाश्चात्य और पूर्वी विद्वानों ने भी काव्य-प्रेरणा के संबंध में विचार किया है। प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने दैवी प्रेरणा को ही काव्य-प्रेरणा माना है। उनका विचार था कि जब ईश्वर जगत के मनुष्यों से बातचीत करना चहता है तो वह कवियों की वाणी के माध्यम से अपने आपको व्यक्त करता है। सुकरात के शिष्य प्लेटो और प्रशिष्य अरस्तू ने अनुकरण की वृत्ति को काव्य-प्रेरणा का आधार बताया है। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक एवं विद्वान श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के मत में- "काव्य की प्रेरणा अनुभूति से मिलती है, यह स्वतः एक अनुभूत तथ्य है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना करते समय लिखा था- 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबन्धमति-मंजुल मातनोति।" यहाँ 'स्वान्तः सुखाय' से उनका

तात्पर्य आत्मानुभूति या अनुभूति से ही है।

1.2.1.4 काव्य का प्रयोजन

काव्य रचना के प्रयोजन छः है

काव्य प्रयोजन का अर्थ है उद्देश्य। संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य की रचना के उद्देश्यों पर भी गंभीर विचार विमर्श हुआ। भरत से लेकर विश्वनाथ तक ने काव्य का प्रयोजन पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति माना है। पुरुषार्थ चतुष्ट्य से अभिप्राय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति से है। आचार्य मम्मट ने अपने पूर्ववर्ती समस्त विचारों का सार प्रस्तुत करते हुए काव्य रचना के छः प्रयोजन गिनाए हैं।

काव्यं यशसेर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सद्यः परनिर्वृतये कान्ता-सम्मिततयौपदेशयुजे।।

काव्य का प्रयोजन पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति

काव्य-प्रकाश अर्थात् यश की प्राप्ति, संपत्ति-लाभ, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा, रोगादि विपत्तियों का नाश, तुरन्त ही उच्चकोटि के आनंद का अनुभव और प्रेयसी के समान मधुर उपदेश देने के लिए काव्य ग्रन्थ उपादेय (प्रयोजनीय) हैं।

उपर्युक्त श्लोक के आधार पर काव्य के निम्नांकित प्रयोजन स्वीकार किये जा सकते हैं:-

काव्य-रचना का उद्देश्य यश-प्राप्ति

यश-प्राप्ति- प्रायः कविगण यश-प्राप्ति के उद्देश्य से ही काव्य-रचना में प्रवृत्त होते हैं।' कुछ महान कवि ऐसे भी हो सकते हैं जिनका उद्देश्य भले ही प्रारंभ में यश- प्राप्ति न रहा हो, किन्तु काव्य-रचना के अनंतर वे अपनी रचना की प्रशंसा अवश्य चाहते हैं। अस्तु, जैसा कि अंग्रेजी में कहा जाता है- Fame is the last infirmity of noble minds (प्रसिद्धि बड़े आदमियों की सबसे अंतिम कमजोरी है), यह बात कवियों और साहित्यकारों पर भी लागू होती है।

काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण प्रयोजन अर्थ या धन प्राप्ति

अर्थ-प्राप्ति- काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण प्रयोजन अर्थ या धन है। मध्यकाल के अधिकांश दरबारी कवियों ने धन-प्राप्ति के उद्देश्य से ही अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में काव्य लिखे हैं। बिहारी के संबंध में प्रसिद्ध है कि उन्हें प्रत्येक दोहे के लिए एक स्वर्ण मुद्रा दिये जाने का वचन दिया गया था।

व्यवहार ज्ञान- बहुत से कवि अपने निकट संबंधियों, मित्रों या पुत्रादि को नीति एवं व्यवहार की शिक्षा देने के लिए भी काव्य-रचना करते हैं।

लोक-हित- अपने युग और समाज को अनिष्ट से बचाने के लिए भी काव्य- रचना की जाती है। 'कुरुक्षेत्र' के रचयिता दिनकर ने अपने काव्य में विश्व को युद्ध के अनिष्ट से बचाने के लिए ही शांति का संदेश दिया है।

आत्म-शांति- काव्य-रचना के अनंतर कई बार कवियों को अपूर्व शांति एवं आनंद का अनुभव होता है, अतः इसे भी काव्य का एक प्रयोजन स्वीकार किया जा सकता है।

साहित्य का लक्ष्य मनुष्य जाति का हित करना

कान्ता-सम्मित उपदेश- अपने उपदेश, विचार या सिद्धांत को मर्मस्पर्शी बनाने के लिए भी काव्य का माध्यम अपनाया जाता है। कबीर, नानक आदि सन्त कवियों ने अपने विचारों का प्रकाशन इसीलिए कविता के माध्यम से किया है। महाकवि बिहारी ने भी विभिन्न अवसरों पर अपने आश्रयदाताओं को उपदेश देने के लिए कुछ दोहे की रचना की। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी साहित्य का लक्ष्य मनुष्य जाति का हित करना और हृदय का विस्तार करना मानता

है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने साहित्य का प्रयोजन आत्मानुभूति बताया है। डॉ. नगेन्द्र ने अपने एक लेख में साहित्य का प्रयोजन आत्माभिव्यक्ति स्वीकार किया है।

1.2.1.5 कला कला के लिए

इस सिद्धांतकारों का मानना था कि काव्यकला की दुनिया स्वायत्त है, ऑटोनोमस है, अर्थात् जो किसी दूसरे के शासन या नियंत्रण में नहीं हो, बल्कि जिस पर अपना ही अधिकार हो। उनका यह भी मानना था कि कला का उद्देश्य धार्मिक या नैतिक नहीं है, बल्कि ख़ुद की पूर्णता की तलाश है। अपने इन विचारों को रखते हुए कलावादियों ने कहा कि कला या काव्यकला को किसी उपयोगितावाद, नैतिकतावाद, सौंदर्यवाद आदि की कसौटी पर कसना उचित नहीं है।

▶ कला का उद्देश्य खुद की पूर्णता की तलाश है

कलावादियों के अनुसार कला को अगर किसी कसौटी पर परखना ही है तो उसकी कसौटी होनी चाहिए सौंदर्य-चेतना की तृप्ति। उनके अनुसार कला सौंदर्यानुभूति का वाहक है और उसका अपना लक्ष्य आप ही है।

1.2.1.6 कविता क्या है?

सुकरात के शिष्य प्लेटो ने कविता को अत्यंत हेय एवं घृणापूर्ण दृष्टिकोण से देखा। उसकी धारणाओं का मूलाधार अनुकृति का सिद्धांत है। यह समस्त स्थूल जगत किसी अलौकिक सूक्ष्म जगत की प्रतिच्छाया मात्र है, अतः वह तो मिथ्या है ही, जबकि कविगण अपनी कविताओं में इस मिथ्या जगत के मिथ्या पदार्थों को भी मिथ्या अनुकृतियाँ अंकित करते हैं। इस प्रकार कविता में मिथ्या की मात्रा द्विगुणित हो जाती है। दूसरे, कवि या साहित्यकार हमारे ज्ञान की अभिवृद्धि न करके हमारी वासनाओं, इच्छाओं एवं भावनाओं को उद्वेलित करते हैं जिससे हमारे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में दुर्बलता, अशक्तता एवं अनियमितता आती है। इन आक्षेपों के आधार पर प्लेटो ने अपने देशवासियों को कविता का बहिष्कार कर देने का परामर्श दिया था। उनके शब्दों में- "We should expel poetry from the city such being her nature, In case she should accuse us of brutality and boorishness,..... let us state that it the pleasure producing poetry and imitation have any arguments to show that she is in her right place in a well-governed city, we shall be very glad to receive her back again." (Greek Literary Criticism, page 87) अर्थात् "कविता की मूल प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उसे अपने राज्य में से निकाल देना चाहिए। यदि वह हम पर निर्दयता या अन्याय का आरोप लगाये तो हमें उसे बता देना चाहिए कि हमारे इस सुव्यवस्थित राज्य में उसे तभी स्थान मिल सकता है, जब वह अपने आपको निर्दोष एवं उपयोगी सिद्ध करे।" वस्तुतः प्लेटो ने कविता के केवल असुंदर पक्ष को एकांगी दृष्टिकोण से देखा, इसी से उनका कविता संबंधी विवेचन ऊहात्मक एवं दोषपूर्ण हो गया है।

▶ कवि या साहित्यकार हमारी वासनाओं, इच्छाओं एवं भावनाओं को उद्वेलित करते है

1.2.1.7 काव्य का स्वरूप

काव्य- रचना की परंपरा न केवल भारत बल्कि समूचे विश्व में साहित्य की सर्वाधिक प्राचीनतम परंपरा है। सहज प्रभावी, सहज स्मरणीय एवं सूत्र-रूप में होने के कारण ही विश्व में सर्वप्रथम साहित्य के अंतर्गत काव्य को सर्वाधिक प्रश्रय मिला। साहित्यिक या काव्यानुभूतियों को वहन करके उसे अभिव्यक्ति देने का काम भाषा करती है। इसी कारण भाषा को काव्य का कलेवर कहा गया है। इस दृष्टि से काव्य में एक अनुभूति एवं दूसरा अभिव्यक्ति पक्ष

हुआ करता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का सामंजस्य ही काव्य है। भाषा के पर्यावरण में डलकर ही कोई अनुभूति व्यक्त हुआ करती है। भाषा में शब्द और अर्थ दोनों तत्व समाविष्ट रहा करते हैं। जो विशेषताएँ शब्दार्थ-संयत भाषा में विद्यमान रहा करती हैं, उनके अनेक रूप हैं। शब्द-शक्तियाँ, गुण, वृत्तियाँ, रीति और लोकोक्ति आदि इसी प्रकार की प्रमुख भाषायी विशेषताएँ, जो काव्य को काव्यत्व प्रदान करके उसे रसात्मक अनुभूति के रूप में व्यक्त करते हैं।

▶ भाषा को काव्य का कलेवर कहा जाता है

संस्कृत में 'काव्यादर्श' के प्रणेता आचार्य दण्डी का कथन है कि- "वाचामेव प्रसादेन लोक-यात्रा प्रवतंत" अर्थात् वाणी के वरदान के कारण ही मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ है। इसी के आधार पर मानव-जीवन की विकास-यात्रा संभव होती है। वाणी का यह भावावेशमय सशक्त विधान ही काव्य है, जो सुर-ताल-लय का आश्रय लेकर चिरन्तन काल से मानव-मन और जीवन का प्रसाधन कर रहा है।

▶ वाणी के वरदान के कारण मनष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ

1.2.1.8 काव्य गुण

साहित्यिक या काव्यानुभूतियों को वहन करके उसे अभिव्यक्ति देने का काम भाषा करती है। इसी कारण भाषा को काव्य का कलेवर कहा गया है। दूसरे शब्दों में काव्यानुभूति एवं सौंदर्य का भरण-पोषण एवं उत्कर्ष भाषा के वर्ण, शब्द, अर्थ आदि विविध अंगों के समुचित प्रयोग एवं उपयोग से होता है। इन्हीं के वर्ण्य-विषय के अनुरूप उचित प्रयोग का नाम काव्य-गुण होता है। 'काव्यालंकार' के रचयिता आचार्य वामन के अनुसार 'काव्य-शोभायाः कर्तारो बर्मा गुणाः' अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म (तत्व) ही गुण कहलाते हैं।

▶ वर्ण्य-विषय के अनरूप भाषा के वर्ण, शब्द, अर्थ आदि विविध अंगों के समचित प्रयोग एवं उपयोग काव्य-गुण

संस्कृत के आचार्यों ने अपने-अपने मतों के अनुसार अनेक काव्य-गुणों की परिकल्पना की है। उनमें से संस्कृत काव्य-शास्त्र में कुछ समय तक निम्नलिखित दस काव्य-गुणों को स्वीकृति मिलती रही श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद-सौंदर्य, अर्थाभिव्यक्ति, उदारता और कान्ति। किन्तु परवर्ती संस्कृत के विशिष्ट एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्य-प्रकाश' में उपयुक्त दस गुणों का विवेचनात्मक समाहार करते हुए केवल तीन ही काव्य - गुण स्वीकार किये। वे हैं :- 1. माधुर्य 2. ओज और 3. प्रसाद।

▶ काव्य-गुण तीन मानते हैं

माधुर्य गुण- जिस काव्य-कृति के अध्ययन-श्रवण से पाठक या श्रोता के हृदय में अनुभूति और सौंदर्य के सहज आनंद की सृष्टि होते हैं, उसे माधुर्य-गुण माना जाता है। अपने स्वरूप और वृत्ति में यह काव्य-गुण कोमल-मधुर माना गया है, अतः इसमें कोमल-मधुर शब्दों का प्रयोग ही किया जाता है। समस्त-पद, टवर्ग ध्वनियाँ, अनुनासिक वर्ण एवं रेफ या रकार आदि का प्रयोग इस प्रकार के काव्यों में वर्जित माना जाता है। कोमल-मधुर होने के कारण ही रस-दृष्टि से श्रृंगार, करुण, शान्त रसों में इस गुण का समावेश स्वभावतः हो जाता है।

▶ माधुर्य-गुण कोमल-मधुर माना गया है

ओज गुण- जो काव्य-कृति या साहित्यिक सर्जना पाठक एवं श्रोता के मनः लोक को सहज स्फूर्त एवं आवेश-संयत कर देती है, उसके तन मन में ओजस्विता संचार कर देती है, उसमें ओज गुण माना जाता है। इस प्रकार के काव्य या साहित्य में द्वित्व, संयुक्त, समास-बहुल पदों, टवर्ग युक्त ध्वनियों एवं कठोर वर्णों का प्रयोग हुआ करता है। रस की दृष्टि से वीर, रौद्र और बीभत्स रसों में ओजगुण की प्रमुखता रहा करती है।

▶ पाठक एवं श्रोता के तन मन में ओजस्विता संचार कर देती है, तो उस काव्य-कृति में ओज गुण

प्रसाद गुण- ऐसी काव्य रचना जिसको पढ़ते ही अर्थ ग्रहण हो जाता हैं तो वह प्रसाद गुणों

से युक्त मानी जाती है। अर्थात् जब बिना किसी विशेष प्रयास के काव्य का अर्थ स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है उसे प्रसाद गुण युक्त काव्य कहते हैं। स्वच्छता एवं स्पष्टता प्रसाद गुण की विशेषता मानी जाती है। यह समस्त रचनाओं और रसों में रहता है। इसमें आए शब्द सुनते ही अर्थ के द्योतक होते हैं। जिस काव्य को पढने या सुनने से हृदय या मन खिल जाए, हृदयगत शांति का बोध हो, उसे प्रसाद गुण कहते है। इस गुण से युक्त काव्य सरल, सुबोध होता है।

▶ प्रसाद गुण से युक्त काव्य सरल, सुबोध होता है

1.2.1.9 काव्य-दोष

दोष चाहे जीवन और व्यवहार में हो चाहे काव्य में, वह सदा-सर्वदा से अशुभ ही माना जाता है। आचार्य भरत ने काव्य के क्षेत्र में दोषों की ओर ध्यान तो आकर्षित किया। गुणों को परिभाषित करते समय आचार्य भरत केवल इतना ही कहकर रह गये कि "विपर्यस्तो गुणाः काव्येषु कोतिताः" अर्थात् काव्यों में वर्णित गुणों के विपरीत जो कुछ भी है, वह सब दोष कहा जाएगा।

▶ काव्यों में वर्णित गुणों के विपरीत जो कुछ भी है, वह सब दोष है

काव्य-दोषों के वर्गीकरण के बारे में आचार्यों के मत में पर्याप्त अंतर देखा जा सकता है। आचार्य वामन ने केवल चार ही दोष स्वीकार किये हैं- पद-दोष, पदार्थ-दोष, वाक्य-दोष, और वाक्यार्थ दोष। इसके विपरीत आचार्य मम्मट ने दोषों के तीन मुख्य वर्ग किये हैं और फिर उनके अंतर्गत दोषों के कई दोष बताए हैं। उनकी दृष्टि में दोषों के मुख्य तीन वर्ग हैं:- (क) शब्द-दोष, (ख) अर्थ-दोष, (ग) रस-दोष।

▶ कविता पढ़ने या सुनने मात्र से कानों में कटुता उत्पन्न हो जाय तो वह कटुत्व दोष है

शब्द-दोष- वर्णों अथवा शब्दों के प्रयोग में असावधानी होने पर जब अर्थ का बोध होने से पहले ही दोष जान पड़े, वहाँ शब्द-दोष होता है। शब्द-दोष निम्नलिखित होते हैं श्रुति कटुत्व दोष जब किसी कविता के पढ़ने अथवा सुनने मात्र से कानों में कटुता अथवा कड़वापन उत्पन्न हो जाय तो वहाँ श्रुति कटुत्व दोष होता है। कोमल रसों के वर्णन में कठोर वर्गों के प्रयोग से श्रुति कटुत्व दोष उत्पन्न होता है।

अर्थ-दोष- जब काव्य का अर्थ ग्रहण करने में बाधा हो तो वहाँ अर्थ दोष होता है। इन्हें अर्थगत दोष भी कह सकते हैं।

▶ भाव, विभाव और संचारी भावों का उचित विवेचन न होना वह रस दोष है।

रस-दोष- इन्हें रसगत दोष भी कहा जाता है। काव्य रचना का उद्देश्य रसास्वादन है। इसमें किसी तरह का व्यवधान होने पर रस दोष माना जाता है। भाव, विभाव और संचारी भावों का उचित विवेचन न होना अर्थात् उनका प्रतिकूल अवस्था में चित्रण होना भी रस दोष है। जैसे- शृंगार रस के वर्णन में करुण रस का होना भी रस दोष है।

1.2.1.10 कविता के विभिन्न लक्षण

शुक्ल जी के मत में - "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।" हृदय की मुक्तावस्था से उनका अभिप्राय है हृदय का अपने-पराए की भावना से मुक्त होना।

▶ हृदय की मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।

काव्यप्रकाशकार मम्मट काव्य का लक्षण इस प्रकार करते हैं -

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।'

अर्थात्, दोषों से रहित, गुण-युक्त और साधारणतः अलङ्कार सहित परन्तु कहीं-कहीं

अलङ्कार-रहित शब्द और अर्थ दोनों की समष्टि काव्य कहलाती है।

1.2.11 कविता के तत्व

कविता के तत्व किसी रचना के घटक भाग हैं जो इसे गद्य लेखन से अलग करते हैं। कविता की ये विशेषताएँ पाठकों को, कविता को पहचानने में मदद करती हैं। मूलतः इसके नौ भेद हैं: अनुप्रास, व्यंजन, आलंकारिक भाषा, कल्पना, छंद, लय, और स्वर। कुल मिलाकर, ये तत्व दर्शाते हैं कि लेखन का एक टुकड़ा एक कविता है, जो चित्र बनाता है, भाषा में हेरफेर करता है, कविता का उपयोग करता है, और अन्यथा एक कलात्मक रचना बनाने के लिए शब्दों को रचनात्मक रूप से पुनर्व्यवस्थित करता है।

▶ लेखन का एक टुकड़ा एक कविता है

1.2.12 काव्य के भेद

रूप-रचना या स्वरूप-विधान की दृष्टि से काव्य के निम्नलिखित दो प्रमुख भेद हैं:-

1. प्रबन्ध-काव्य 2. मुक्तक-काव्य

▶ काव्य के दो भेद हैं प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक-काव्य

प्रबन्ध-काव्य- प्रबन्ध-काव्य के मुख्य भेद होते हैं क्रमशः - 1. महाकाव्य 2. खण्ड-काव्य 3. काव्य-रूपक 4. विचार-काव्य।

मुक्तक-काव्य- जिस काव्य में प्रत्येक पद्य स्वतः पूर्ण हो, निबद्धता या निबद्ध भाव-सत्ता से सर्वथा मुक्त हो, जिस में पूर्वापर प्रसंग की चिन्ता और आग्रह भी न हो, सामान्यतः उसे मुक्तक-काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है।

▶ मुक्तक-काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है

महाकाव्य- महाकाव्य "काव्य" कला का एक महत्वपूर्ण रूप होता है और इसमें विचारों, भावनाओं, और कथाओं का उद्गारण होती है। इसमें अधिकतर भाषा, संस्कृति, और मानव जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करता है। महाकाव्यों के चरित्र, घटनाएँ, और छंद के मुख्य भूमिका होती है और ये आमतौर पर भाषा के उच्च स्तर का प्रतीक होते हैं।

▶ भाषा का उच्च स्तर का प्रतीक

महाकाव्य अधिकतर महान कवियों द्वारा रचे जाते हैं और वे समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, क्योंकि वे आम लोगों को आदर्श और मार्गदर्शन करने में मदद मिलती हैं। इसलिए, "महाकाव्य" एक महत्वपूर्ण साहित्यिक श्रेणी है जो सांस्कृतिक मूल्यों को प्रस्तुत करने का आधार बनती है।

▶ महाकाव्य अधिकतर महान कवियों द्वारा रचे जाते हैं

महाकाव्य में आठ या उससे अधिक सर्ग होते हैं। महाकाव्य का नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त होता है। इसमें शांत, वीर अथवा श्रंगार रस में से किसी एक की प्रधानता होती है। महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसमें अनेक छंदों का प्रयोग होता है। ये सब महाकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

▶ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति

मुक्तक काव्य

इस काव्य में एक अनुभूति एक भाव या कल्पना का चित्रण किया जाता है। इसमें महाकाव्य या खण्डकाव्य जैसी धारावाहिता नहीं होती। फिर भी वर्ण्य-विषय अपने में पूर्ण होता है। प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र होता है। जैसे कबीर, बिहारी, रहीम के दोहे तथा सूर और मीरा के पद। मुक्तक काव्य अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र काव्य रचना(छंद/इकाई) होती है। इसकी पूर्णता के लिए ना तो इसके पहले और ना इसके बाद में, किसी संदर्भ या कथा की

▶ मुक्तक काव्य अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र काव्य रचना है

आवश्यकता होती है।

▶ संगीतात्मक प्रधान काव्य गीति काव्य

गेय मुक्तक (गीति काव्य)- इसको प्रगीत भी कहते हैं। इसमें भावना और रागात्मकता एवं संगीतात्मकता की प्रधानता होती है। कबीर, तुलसी, सूर, मीरा के गेय पद तथा आधुनिक युग के प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी वर्मा आदि की कविताएँ इसी श्रेणी की हैं।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

'साहित्य' व्यापक अर्थ में लिखित एवं मौखिक रचनाओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का सामंजस्य ही काव्य है। काव्य का प्रयोजन पुरुषार्थ चतुष्ठ्य की प्राप्ति माने जाते हैं। सुकरात के शिष्य प्लेटो ने कविता को अत्यंत हेय एवं घृणापूर्ण दृष्टिकोण से देखा। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने साहित्य का प्रयोजन आत्मानुभूति बताया है। काव्य के मुख्य दो भेद हैं प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक-काव्य। महाकाव्य अधिकतर महान कवियों द्वारा रचे जाते हैं और मुक्तक काव्य अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र काव्य रचना है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. साहित्य के स्वरूप पर विचार कीजिए।
2. साहित्य में कल्पना और बिंब की भूमिका क्या है?
3. काव्य की मूल प्रेरणा और उसका प्रयोजन पर टिप्पणी लिखिए।
4. कविता के विभिन्न लक्षण एवं तत्व की व्याख्या कीजिए।
5. काव्य गुण क्या है ?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भमिूका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 3

रस सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रस सिद्धांत और उसका महत्व समझता है
- रस का स्वरूप जानता है
- रसों का विवेचन समझता है
- भरतमुनि के रससूत्र से परिचय प्राप्त करता है
- रस के विभिन्न अवयव के बारे में जानकारी प्रप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

भरत मुनि का रस सिद्धांत (Ras Siddhant) भारतीय काव्यशास्त्र का महत्वपूर्ण सिद्धांत है। 'रस' का सामान्य अर्थ आनंद से लिया जाता है। भारतीय साहित्य शास्त्र में रस की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। प्राचीन आचार्यों ने तो योग की साधनावस्था को ही रस की अवस्था कहा है। काव्य भी एक साधना है जिसमें काव्य-कर्ता और काव्य-भोक्ता दोनों को ही रस की प्राप्ति होती है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

रस सिद्धांत, आस्वाद, रससूत्र, रसों का विवेचन, रस के विभिन्न अवयव, उद्दीपन

Discussion / चर्चा

रस है क्या? इस विषय पर विद्वानों ने गंभीर चिंतन किया है। लेकिन आज उनमें मतभेद हैं। 'रस' शब्द 'रस्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय के जुड़ने से बना है। इसकी व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है- "रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।" अर्थात् जो आस्वादित किया जा सके उसे रस कहते हैं।

1.3.1 रस सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य

रस-सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं। उन्होंने अपने नाट्यशास्त्र में रस के विभिन्न अवयवों का विवेचन किया है। भरतमुनि के कार्य को अनेक परवर्ती आचार्यों- भट्ट-लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, भोजराज, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि ने आगे बढ़ाया। आगे चलकर हिन्दी के कवियों और आचार्यों ने भी रस-सिद्धांत का महत्व स्वीकार किया है। आधुनिक युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. नगेन्द्र ने रस-सिद्धांत की नई व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। यद्यपि अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि संप्रदायों के प्रवर्तकों ने

- रस-सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि

रस के विरोध में नये-नये संप्रदायों की स्थापना करने का प्रयास किया, किन्तु उन्हें सफलता न मिली और अन्त में उन्हें भी किसी-किसी रूप में रस का महत्व स्वीकार करना पड़ा।

1.3.1.1 रस सिद्धांत और उसका महत्व

रस को काव्य की आत्मा या प्राणतत्व माना गया है। रसहीन काव्य निर्जीव है, अतः रस के बिना काव्य का अस्तित्व- ही नहीं है। जैसे प्राण के अभाव में शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार रस के अभाव में कोई रचना काव्यत्व से ही रहित हो जाती है। रस ही कविता को प्राणवान बनाता है और वही पाठक या श्रोता को आनंदमग्न करके भाव समाधि में पहुंचा देता है। अतः रस को काव्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जा सकता है।

▶ रस काव्य की आत्मा या प्राण तत्व

1.3.1.2 रस की अनेक विशेषताएँ

1. रस आस्वाद रूप है, आस्वाद्य नहीं।
2. रस की उत्पत्ति सतोगुण के उद्रेक से होती है।
3. रस ब्रह्मानन्द सहोदर है।
4. रसानुभूति अलौकिक होती है।
5. रस चिन्मय (ज्ञान स्वरूप) है।
6. रस स्वप्रकाशानन्द है।
7. रस अखण्ड है।
8. रस की अनुभूति तन्मयता की स्थिति में होती है।
9. रस लोकोत्तर चमत्कार है।

▶ रस का विशेषताएँ

1.3.1.3 रस का स्वरूप

असल में रस का स्वरूप और स्रोत हमेशा प्रत्येक व्यक्ति के अपने भीतर ही समाया रहता है। वह बाहर से आरोपित होनेवाली कोई वस्तु नहीं है। अनुभूति के क्षण में हमारी अनेकविध चेष्टाएँ ही रस-स्वरूप का निर्माण करती है। हमारे आचार्यों ने रस निष्पत्ति को लेकर अनेक चर्चाएँ की हैं। पर रस के स्वरूप विधान की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। आचार्य भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में रस-स्वरूप के निर्धारण की दृष्टि से एक वार्तिका मिलती है वह इस प्रकार है:-

▶ अनुभूति के क्षण में हमारी अनेकविध चेष्टाएँ ही रस-स्वरूप का निर्माण करती है

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति'

अर्थात् विभाव, अनुभाव, और व्यभिचारी (संचारी) भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इनके बाद 'काव्य दर्पण' के रचयिता मम्मट और 'अभिनव भारती' के रचयिता आचार्य अभिनव गुप्त ने भी रस स्वरूप का विवेचन करने की कोशिश की है। ये मूलतः शैव द्वैत दर्शन के समर्थक थे। इन्होंने मात्र आनंद को ही काव्य विषय या रस-विषय माना है, क्योकि भारतीय दर्शनों में परमात्मा और उसके अंश को आत्मा को आनंद स्वरूप माना गया है।

▶ विभाव, अनुभाव, और व्यभिचारी (संचारी) भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि आचार्यों के अनुसार शब्दार्थ के माध्यम से विशुद्ध भाव भूमिका में आत्म-चैतन्य के (आनंद मय) आस्वाद का नाम रस है। इस संदर्भ में आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत रस का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक सहज एवं व्यावहारिक है- जब तक कोई अपनी पृथक सत्ता की भावना को ऊपर किए इस क्षेत्र (जगत) के नाना रूपों और व्यापारों को अपने योग-क्षेत्र, हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि से संबंध करके देखता रहता है, तब

तक उसका हृदय एक प्रकार से बद्ध रहता है। इन रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी वह अपनी पृथक सत्ता की धारणा से छूटकर-अपने आपको बिल्कुल भूलकर विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। इस अवस्था में मनुष्य-हृदय स्वार्थ संबंध ों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठ जाता है और लोक सामान्य भाव भूमि पर पहुँच जाता है यहाँ शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है और इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है। यह आनंदावस्था ही रसावस्था है।

▶ "आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा है और हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा है"- रामचन्द्र शुक्ल का कथन है

1.3.1.4 रसों का विवेचन

रति आदि संस्कार वासना रूप से सहृदय के हृदय में विद्यमान रहते हैं स्थायी भाव आलम्बन द्वारा उद्‌बुद्ध होकर, उद्दीपन द्वारा उद्दीप्त होता है तथा अनुभावों से प्रतीति योग्य बनता है और संचारी भावों से पुष्ट होकर रसरूप में परिणत हो जाता है। सामाजिक के हृदय में रजोगुण और तमोगुण का तिरोभाव होते समय रस की निष्पत्ति होता है। रस अखण्ड होता है। रसानुभूति के समय विभावादि अपना स्वतन्त्र अस्तित्व त्यागकर स्थायी भाव में लय हो जाते हैं और सहृदय को उनकी पृथक्-पृथक् अनुभूति न होकर समन्वित अनुभूति होती है।

▶ रस अखण्ड होता है

रसानुभूति की स्थिति में उसे अन्य वेद्य विषयों का ज्ञान ही नहीं रहता। वह राग-द्वेष एवं देशकाल की सीमाओं से मुक्त होकर पूर्णतः आत्मलीन हो जाता है। रस स्वप्रकाशानन्द तथा चिन्मय है। रस ब्रह्मानन्द सहोदर है। और रस न सविकल्पक ज्ञान है, न निर्विकल्पक ज्ञान, अतः अलौकिक है। रस सुख-दुखात्मक न होकर आनंद मय है। रस सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र में सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रतिष्ठित सिद्धांत है तथा रस की महत्ता को सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है। रस को ही काव्य की आत्मा माना गया है।

▶ रस स्वप्रकाशानन्द तथा चिन्मय है

1.3.1.5 भरतमुनि का रससूत्र

भरत मुनि का रस सूत्र इस प्रकार है: 'विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः' अर्थात् "विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।" इस सूत्र के आधार पर ही परवर्ती आचार्यों ने रस के स्वरूप पर तथा रस निष्पत्ति पर पर्याप्त विचार किया और इससे रस सिद्धांत का विकास हुआ। भरत ने रस विवेचन के संबंध में जिस श्लोक को प्रस्तुत किया है उसके अनुसार- "जिस प्रकार अनेक व्यंजनों और औषधियों के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार अनेक भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। जैसे गुड़ आदि द्रव्यों तथा औषधियों आदि से षाडवादि रस उत्पन्न होते हैं, वैसे ही अनेक भावों से उपस्थित होने से स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त होता है।' भरत मुनि के अनुसार रस आस्वाद न होकर आस्वाद्य है, अर्थात् वह एक ऐसा तत्व है जिसका स्वाद लिया जा सकता है। रस के विविध अवयव समन्वित होकर ही रसत्व को प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि वे अवयव रस नहीं हैं, अपितु संयुक्तावस्था में वे रस रूप को प्राप्त होते हैं। भरत यह भी कहते हैं कि जिस प्रकार स्वस्थ चित्त वाला व्यक्ति ही भोज्य पदार्थों का आस्वाद ले सकता है उसी प्रकार सहृदय ही रस का आस्वादन कर सकता है। भरत ने रस की वस्तुपरक व्याख्या की है।

▶ रस के विविध अवयव समन्वित होकर ही रसत्व को प्राप्त होते हैं

1.3.1.6 रस के विभिन्न अवयव

रस के चार अवयव हैं : (1) स्थायी भाव (2) विभाव (3) अनुभाव (4) संचारी भाव

(1) स्थायी भाव - जो भाव हृदय में सदैव स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं किन्तु अनुकूल कारण पाकर उद्‌बुद्ध होते हैं, उन्हें स्थायी भाव कहा जाता है। इनकी संख्या नौ मानी गई है। रति, उत्साह, क्रोध, जुगुप्सा, विस्मय, निर्वेद, हास, भय, शोक स्थायी भाव हैं। प्रत्येक स्थायी भाव से संबंधित एक रस होता है जिसका विवरण इस प्रकार है: रस का नाम स्थायी भाव 1. श्रृंगार : रति 2. वीर : उत्साह 3. रौद्र : क्रोध 4. वीभत्स : जुगुप्सा 5. अद्‌भुत : विस्मय 6. शान्त : निर्वेद 7. हास्य : हास 8. भयानक : भय : 9. करुण : शोक इनके अतिरिक्त दो रसों की चर्चा और होती है : 10. वात्सल्य : सन्तान विषयक रति 11. भक्ति: भगवद् विषयक रति स्थायी भावों की संख्या नौ ही मानी गई है, अतः मूलतः 'नवरस' ही माने गए हैं।

▶ स्थायी भावों की संख्या नौ ही मानी गई है

रति के तीन भेद माने जा सकते हैं- दाम्पत्य रति, वात्सल्य रति, भक्ति संबंधी रति। इन तीनों से क्रमशः शृंगार, वात्सल्य एवं भक्ति रस की निष्पत्ति होती है। श्रृंगार रस को रसराज माना गया है। (2) विभाव-विभाव का अर्थ है 'कारण'। जिन कारणों से सहृदय सामाजिक के हृदय में स्थित स्थायी भाव उद्‌बुद्ध होता है उन्हें 'विभाव' कहते हैं। विभाव दो प्रकार के होते हैं : (अ) आलम्बन विभाव-जिसके कारण आश्रय के हृदय में स्थायी भाव उद्‌बुद्ध होता है उसे आलम्बन विभाव कहते हैं। दुष्यन्त के हृदय में शकुन्तला को देखकर 'रति' नामक स्थायी भाव उद्‌बुद्ध हुआ तो यहाँ दुष्यन्त आश्रय है, शकुन्तला आलम्बन है। (ब) उद्दीपन विभाव-ये आलम्बन विभाव के सहायक एवं अनुवर्ती होते हैं। उद्दीपन के अंतर्गत आलम्बन की चेष्टाएँ एवं बाह्य वातावरण दो तत्व आते हैं जो स्थायी भाव को और अधिक उद्दीप्त, प्रबुद्ध एवं उत्तेजित कर देते हैं।

▶ जिन कारणों से सहृदय सामाजिक के हृदय में स्थित स्थायी भाव उद्‌बुद्ध होता है उन्हें 'विभाव' कहते हैं।

शकुन्तला की चेष्टाएँ दुष्यन्त के रति भाव को उद्दीप्त करेंगी तथा उपवन, चांदनी रात, नदी का एकान्त किनारा भी इस भाव को उद्दीप्त करेगा अतः ये दोनों ही 'उद्दीपन' हैं। (3) अनुभाव 'आश्रय' की चेष्टाएँ अनुभाव के अंतर्गत आती हैं जबकि आलम्बन की चेष्टाएँ उद्दीपन के अंतर्गत मानी जाती हैं। अनुभाव की परिभाषा देते हुए कहा गया है: "अनुभावो भाव बोधकः" अर्थात् भाव का बोध कराने वाले कारण अनुभाव कहलाते हैं। आश्रय की वे बाह्य चेष्टाएँ जिनसे यह पता चलता है कि उसके हृदय में कौन-सा भाव उद्‌बुद्ध हुआ है- 'अनुभाव' कहलाती हैं। सात्विक-सत्व के योग से उत्पन्न वे चेष्टाएँ जिन पर हमारा वश नहीं होता सात्विक अनुभाव कही जाती हैं। इनकी संख्या आठ है- 1. स्वेद, 2. कम्प, 3. रोमांच, 4. स्तम्भ, 5. स्वरभंग, 6. अश्रु, 7. वैवर्ण्य 8. प्रलय।

▶ अनुभाव की संख्या आठ है

(4) संचारी भाव-स्थायी भाव को पुष्ट करने वाले भाव को संचारी भाव कहलाते हैं। ये सभी रसों में संचरण करते हैं। इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहा जाता है। इनकी संख्या 33 मानी गई है। इन संचारी भावों के नाम इस प्रकार हैं- 1. निर्वेद 2. ग्लानि 3. शंका 4. असूया 5. मद 6. श्रम 7. आलस्य 8. दैन्य 9. चिन्ता 10. मोह 11. स्मृति 12. धृति 13. ब्रेड़ा (लज्जा) 14. चपलता 15. हर्ष 16. आवेग 17. जड़ता 18. गर्व 19. विषाद 20. औत्सुक्य 21. निद्रा 22. अपस्मार 23. स्वप्न 24. विवोध 25. अवमर्ष 26. अवहित्था 27. उग्रता 28. मति 29. व्याधि 30. उन्माद 31. मरण 32. त्रास 33. वितर्क। इस प्रकार रस सिद्धांत काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है तथा रस काव्य की आत्मा है।

▶ काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है रस सिद्धांत

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

भारतीय साहित्य शास्त्र में रस की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। रस ही कविता को प्राणवान बनाता है। रस को काव्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जा सकता है। भरत कहते हैं कि जिस प्रकार स्वस्थ चित्त वाला व्यक्ति ही भोज्य पदार्थों का स्वाद ले सकता है उसी प्रकार सहृदय ही रस का आस्वादन कर सकता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. रस सिद्धांत क्या है? उसका महत्व समझाइए।
2. रस स्वरूप का परिचय दीजिए।
3. रस विवेचन से क्या तात्पर्य है?
4. भरतमुनि के रससूत्र की व्याख्याकारों का परिचय दीजिए।
5. रस के विभिन्न अवयव के बारे में वर्णन कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 4

रस निष्पत्ति और साधारणीकरण

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रस निष्पत्ति की प्रतिक्रिया से जानकारी प्रप्त करता है
- साधारणीकरण का अर्थ समझता है
- भट्टलोलट का उत्पत्तिवाद के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- शंकुक का अनुमितिवाद से परिचित होता है
- भट्टनायक का भोगवाद से परिचित होता है
- अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद जानता है
- रस सिद्धांत में साधारणीकरण का विशेष महत्व समझता है

Background / पृष्ठभूमि

भारतीय काव्य शास्त्र में रसनिष्पत्तिः एवं साधारणीकरण पर विशद चर्चा हुई है। सर्वप्रथम आचार्य भारतमुनि ने इस संबंध में एक सूत्र दिया- विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः। भरत मुनि के रस सूत्र में संयोग और निष्पत्ति पर अनेक विद्वानों में पर्याप्त मतभेद मिलता है। सभी ने अपने अपने ढंग से इसकी व्याख्या की है। इन में चार विद्वानों भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनव गुप्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन चारों में से भट्टलोल्लट तथा शंकुक ने साधारणीकरण की ओर कभी संकेत नहीं दिया था। केवल भट्टनायक ही ऐसे पहले आचार्य थे, जिन्होंने साधारणीकरण की अवधारणा की। आचार्य भरतमुनि ने प्रत्यक्ष रूप में साधारणीकरण के विषय में स्पष्ट नहीं कहा अपितु अप्रत्यक्ष रूप से साधारणीकरण की बात की है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

रसनिष्पत्ति, उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद, भुक्तिवाद, साधारणीकरण

Discussion / चर्चा

रसनिष्पत्ति भारतीय काव्यशास्त्र का अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। वास्तव में रस का विवेचन यहाँ रस की निष्पत्ति से ही आरम्भ होता है क्योंकि भरत ने मूलतः रस के स्वरूप के बारे में नहीं, रस की निष्पत्ति का ही व्याख्यान किया है: 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी [भावों] के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। भरत ने स्वयं 'निष्पत्ति' की व्याख्या इस प्रकार की है:- जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से [भोज्य] रस की निष्पत्ति होती है, उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव 'रस' रूप प्राप्त करते हैं।

1.4.1 रस निष्पति की प्रक्रिया

जिस प्रकार नानाविध व्यंजनों से संस्कृत अन्न का उपभोग करते हुए प्रसन्नचित्त पुरुष रसों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि का अनुभव करते हैं, इसी प्रकार प्रेक्षक विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित वाचिक, आंगिक तथा सात्विक (मानसिक) अभिनयों से संयुक्त स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि को प्राप्त करते हैं। अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का स्थायी भाव के साथ संयोग या संसर्ग होने से रस की सिद्धि होती है। संयोग का अर्थ यहां संसर्ग है। सिद्धि के दो अर्थ हो सकते हैं:

1. उत्पत्ति या अभाव में भाव की कल्पना
2. निमिति।

▶ विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का स्थायी भाव के साथ संयोग या संसर्ग होने से रस की सिद्धि होती है

भरत ने यद्यपि रस के प्रसंग में उत्पत्ति' शब्द का बार-बार प्रयोग किया है, किन्तु दृष्टान्त से स्पष्ट है कि वह केवल औपचारिक ही है- अभाव में भाव की सृष्टि का वाचक नहीं है। निष्पत्ति का अर्थ है विद्यमान उपकरणों के संयोग से नव-रूप-रचना, जो आधारभूत उपकरणों की परिणति होते हुए भी उनसे भिन्न होती है। रस को निष्पत्ति का यही अर्थ भरत को मान्य है। अर्थात् विभावादि से उपगत होकर स्थायी भाव ही रस बन जाते हैं। अतः रस के रूप में किसी नूतन पदार्थ की सृष्टि नहीं होती, विद्यमान स्थायी भाव रूप पदार्थ ही अन्य उपकरणों के सहयोग से नवीन रूप धारण कर लेता है।

▶ विभावादि से उपगत होकर स्थायी भाव ही रस बन जाते है

1.4.1.1 भट्टलोलट का उत्पत्तिवाद

भट्टलोल्लट ने भरत के रस सूत्र की विस्तृत विवेचना करते हुए अनेक नूतन स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं। उन्होंने रस निष्पत्ति का स्पष्टीकरण करते हुए निष्पत्ति का अर्थ- 'उत्पत्ति' माना है। इसीलिए उनके मत को 'उत्पत्तिवाद' की संज्ञा दी है। भट्ट लोल्लट भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' के प्रसिद्ध टीकाकार व उत्पत्तिवाद के प्रवर्तक है। इनका कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं, पर अभिनवभारती, काव्य-प्रकाश, काव्यानुशासन, ध्वन्यालोक-लोचन, मल्लिनाथ की तरला टीका और गोविंद ठाकुर-कृत 'काव्य-प्रदीप' (4-5) में इनके विचार व उद्धरण प्राप्त होते हैं। राजशेखर व हेमचंद्र के ग्रंथों में इनके कई श्लोक 'आपराजिति' के नाम से प्राप्त होते है।

▶ भट्टलोल्लट ने निष्पत्ति का अर्थ- 'उत्पत्ति' माना है

भरत-सूत्र के व्याख्याकारों में भट्टलोल्लट का नाम प्रथम है। इनके मतानुसार रस की उत्पत्ति अनुकार्य में(मूल पात्रों में) होती है, और गौण रूप में अनुसंधान के कारण नट को भी इसका अनुभव होता है। विभाव, अनुभाव आदि के संयोग से अनुकार्यगम आदि में रस की उत्पत्ति होती है। अतः स्थायी भावों के साथ विभावों का उत्पाद्य उत्पादक, अनुभावों का गम्य-गमक और व्याभिचारियों का पोष्य-पोषक संबंध होता है।

▶ 'काव्य-मीमांसा" में भट्ट लोल्लट के तीन श्लोक उद्धृत हैं

1.4.1.2 शंकुक का अनुमितिवाद

रससूत्र के दूसरे व्याख्याता आचार्य शंकुक हैं। उन्होंने रससूत्र की व्याख्या अनुमान प्रमाण के आधार पर की है। शंकुक के अनुसार सहृदय नट या राम आदि पात्रों का आरोप नहीं करता अपितु 'अनुमान' कर लेता है। इसीलिए उनका मत अनुमितिवाद कहा जाता है। शंकुक के अनुसार संयोग का अर्थ है 'अनुमान' और 'निष्पत्ति' का अर्थ है 'अनुमिति'। न्यायशास्त्र के अनुसार प्रतीति चार प्रकार की होती है- (अ) राम को राम समझना-सम्यक प्रतीति (ब) राम है अथवा राम नहीं है- संशयात्मक प्रतीति (स) राम को कुछ अन्य समझना-मिथ्या प्रतीति (द) राम जैसा है- सादृश्य प्रतीति।

▶ सहृदय नट पर राम आदि पात्रों का आरोप नहीं करता अपितु 'अनुमान' कर लेता हैं

चित्र तुरंग ज्ञान इन चारों प्रतीतियों से भिन्न होता है। चित्र में बने घोड़े को देखकर यह कहना कि यह घोड़ा है, चित्र तुरंग ज्ञान कहलाता है। इसी के आधार पर दर्शक अभिनेता पर राम की प्रतीति कर लेता है। नट की अभिनय कुशलता के कारण इसी अनुमान किए गए पात्र में रति आदि भावों का भी अनुमान कर लेता है। इस विलक्षण अनुमान को 'कला प्रतीति' कहा जा सकता है। शंकुक का मत है कि रस निष्पत्ति की समूची प्रक्रिया अनुकरण पर आधारित है। नट-नटी वास्तविक राम-सीता के विभाव, अनुभाव का अनुसरण करते हैं। ये विभावादि वे ही हैं जिनका वर्णन कवि करता है अर्थात् नट-नटी काव्यनिबद्ध 'राम' का अनुकरण करते हैं, मूल पात्र (ऐतिहासिक पात्र) का नहीं।

▶ चित्र में बने घोड़े को देखकर यह कहना कि यह घोड़ा है, चित्र तुरंग ज्ञान है

1.4.1.3 भट्टनायक का भुक्तिवाद

रस सूत्र के तीसरे व्याख्याता आचार्य भट्टनायक हैं। उनका सिद्धांत 'भुक्तिवाद' कहलाता है। भट्टनायक ने अपने पूर्ववर्ती सिद्धांतकारों का खंडन करते हुए कहा कि रस का न तो ज्ञान होता है, न उत्पत्ति, न अभिव्यक्ति। यदि रस दूसरे के भाव के साक्षात्कार अथवा ज्ञान से उत्पन्न होता है तो शोक से शोक की उत्पत्ति होनी चाहिए, आनंद की नहीं और शोक प्राप्त करने के लिए कोई नाटक क्यों देखेगा अथवा काव्य क्यों पढेगा।

▶ रस का न तो ज्ञान होता है, न उत्पत्ति, न अभिव्यक्ति

दूसरी बात यह कि यदि रस सहृदय हृदय में ही स्थित है और विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से अभिव्यक्त हो जाता है तो प्रश्न उठता है कि नायक का व्यक्तिगत भाव प्रेक्षक के वैसे ही व्यक्तिगत भाव को कैसे अभिव्यक्त कर सकता है। भट्टनायक ने रस की स्थिति न तो नायक-नायिका में मानी और न नट-नटी में। रस की स्थिति उन्होंने सीधे सहृदय में मानी। उनके अनुसार काव्य में तीन शक्तियाँ रहती हैंद्ध (1) अभिधा (2) भावकत्व (3) भोजकत्व। अभिधा वह शक्ति है जिसके द्वारा पाठक या दर्शक काव्य के शब्दार्थ को ग्रहण करता है। दूसरी शक्ति है भावकत्व जिसके द्वारा उसे उस अर्थ का भावन होता है। प्रेक्षक के हृदय में सहज साधारण भाव का अर्थ है- रजोगुणं, तमोगुण का लोप होकर सत्वगुण का आविर्भाव हो जाता है और पाठक भाव का भोग करता है। भाव का भोग या भोजकत्व व्यापार ही रस है।

▶ भाव का भोग या भोजकत्व व्यापार ही रस है

इस प्रकार रस की अभिव्यक्ति नहीं भोग या भुक्ति होती है। इसीलिए इस सिद्धांत को भोगवाद कहते हैं। यहाँ भट्टनायक ने भारतीय काव्यशास्त्र के अति महत्वपूर्ण सिद्धांत- साधारणीकरण सिद्धांत- को जन्म दिया।

▶ भारतीय काव्यशास्त्र के अति महत्वपूर्ण सिद्धांत- साधारणीकरण सिद्धांत- जन्म दाता भट्टनायक

1.4.1.4 अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

रस सूत्र के चौथे व्याख्याता आचार्य अभिनवगुप्त हैं। उनके अनुसार रस की न तो उत्पत्ति होती है, न अनुमिति होती है और न ही भुक्ति होती है, अपितु रस की अभिव्यक्ति होती है। इसीलिए उनका मत 'अभिव्यक्तिवाद' कहलाता है। अभिनवगुप्त के अनुसार- रस व्यंजना का व्यापार है। जैसे मिट्टी में व्याप्त गंध जल के छींटे देने से व्यक्त हो जाती है, उसी प्रकार सहृदय सामाजिक के हृदय में वासना रूप से निरन्तर विद्यमान स्थायी भाव विभावादि के द्वारा अभिव्यक्त हो जाते हैं।

▶ रस की न तो उत्पत्ति, अनुमिति या भुक्ति होती है, अपितु रस की अभिव्यक्ति होती है

उनके मत में रस व्यंग्य है जो व्यंजना का व्यापार है। विभाव, अनुभाव और संचारी भाव व्यंजक हैं जो स्थायी भाव को अभिव्यक्त करते हैं। विभावादि सामान्य व्यवहार में लौकिक होते हैं, किन्तु काव्य और नाटक आदि में वे अलौकिक हो जाते हैं। विभाव विभावन व्यापार

से स्थायी भाव को अंकुरित करता है, अनुभाव इसे अनुभव योग्य बना देते हैं और संचारी भाव अनुरंजन व्यापार से इस स्थायी भाव को पुष्ट कर देते हैं। विभावादि की विशिष्टता का लोप हो जाने से वे स्थाई भाव सर्वसाधारण के बन जाते हैं। ये साधारणीकृत रूप में उद्‌बुद्ध हुए स्थायी भाव ही रस-रूप में परिणत हो जाते हैं। अभिनवगुप्त का रस सिद्धांत शैव मत पर आधारित है। जिस प्रकार यह जगत शिव की इच्छा शक्ति की अभिव्यक्ति है उसी प्रकार प्रेक्षक के मन में वासना रूप से अवस्थित स्थायी भाव की निर्विघ्न अभिव्यक्ति रस है। रस ब्रह्मानन्द सहोदर है। रस का आस्वादन एक विलक्षण और लोकातीत अनुभव है। अभिनवगुप्त की व्याख्या में रस की सत्ता आत्मगत मानी गई है। रस सहृदय सामाजिक के हृदय में व्याप्त होता है। अभिनवगुप्त के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ है- अभिव्यक्ति और संयोग का अर्थ है- व्यंग्य-व्यंजक संबंध।

▶ रस सहृदय सामाजिक के हृदय में व्याप्त होता है

1.4.2 साधारणीकरण की अवधारणा

रस सिद्धांत में साधारणीकरण का विशेष महत्व है। वस्तुतः साधारणीकरण के बिना रसानुभूति हो ही नहीं सकती। इस सिद्धांत का आविष्कार करने का श्रेय रससूत्र के तीसरे व्याख्याता आचार्य भट्ट नायक को है। साधारणीकरण का अर्थ है सामान्यीकरण। रंगमंच पर यशोदा-कृष्ण के प्रसंग में यशोदा कृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव का अनुभव करती है। इस नाटक को देखने वाले दर्शक भी कृष्ण की चेष्टाओं को देखकर वात्सल्य का अनुभव करते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि काव्य में वर्णित आशय (यशोदा) के साथ दर्शक (सामाजिक) की अनुभूति का तादात्म्य हो जाता है। साथ ही कृष्ण केवल यशोदा के पुत्र न रहकर सबको अपने पुत्र प्रतीत होते हैं अर्थात् सबके वात्सल्य भाव का आलम्बन बन जाते हैं। इसी प्रक्रिया को साधारणीकरण कहते हैं।

▶ साधारणीकरण का अर्थ है सामान्यीकरण

साधारणीकरण के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने जो मत प्रस्तुत किए हैं, वे निम्नलिखित हैं:

1.4.2.1 भट्ट नायक का मत

भट्ट नायक ने साधारणीकरण की परिभाषा यों दी है: 'भावकत्वं साधारणीकरणं तेन हि व्यापारेण विभावादयः स्थायी च साधारणी क्रियन्ते।' अर्थात् भावकत्व साधारणीकरण है। इस व्यापार से विभावादि और स्थायी भावों का साधारणीकरण होता है। साधारणीकरण के कारण सीता आदि विशेष पात्र कामिनी आदि सामान्य पात्र के रूप में प्रतीत होते हैं। अर्थात् सीता सीता न रहकर कामिनी मात्र रह जाती है।

▶ विशेष से स्वतंत्र होकर सामान्य रूप में प्रतीत होता है

1.4.2.2 अभिनव गुप्त का मत

अभिनव गुप्त का मत है कि साधारणीकरण हो जाने पर विभावादि ममत्व और परत्व की भावना से परे हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि साधारणीकरण की अवस्था में भाव की अनुभूति तो होती है परन्तु यह भाव किसका है इसका कोई ध्यान नहीं रहता। अभिनव गुप्त के अनुसार साधारणीकरण के दो स्तर हैं: 1. पहले स्तर पर विभावादि का व्यक्ति विशिष्ट संबंध छूट जाता है। 2. दूसरे स्तर पर सामाजिक का व्यक्तित्व बन्धन नष्ट हो जाता है। अर्थात् विभावादि के साथ-साथ स्थायी भाव का साधारणीकरण भी होता है और साथ ही सामाजिक की अनुभूति का भी साधारणीकरण हो जाता है। स्पष्ट है कि आचार्य अभिनव गुप्त विभावादि का ममत्व-परत्व संबंध से अलग होना ही साधारणीकरण मानते हैं।

▶ विभावादि का ममत्व-परत्व संबंध से अलग होना ही साधारणीकरण है

1.4.2.3 आचार्य विश्वनाथ का मत

साधारणीकरण के संबंध में आचार्य विश्वनाथ ने कहा: "परस्य न परस्येति ममेति न ममेति च तदास्वादे विभावादेः परिच्छेदो न विद्यते।।" अर्थात् विभावादि का अपने पराये की भावना से मुक्त हो जाना साधारणीकरण है।

▶ विभावादि का अपने पराये की भावना से मुक्त हो जाना साधारणीकरण

आचार्य विश्वनाथ ने साधारणीकरण के प्रसंग में पाठक का आश्रय के साथ तादात्म्य भी माना है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

रस सिद्धांत प्राचीनतम सिद्धांत है। इसका मूल प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि हैं। भरत मुनि के रस सूत्र के चार व्याख्याता आचार्य है- भट्टलोलट, आचार्य शंकुक, भट्टनायक, आचार्य अभिनव गुप्त। हिन्दी के विभिन्न विद्वानों ने साधारणीकरण के संबंध में विभिन्न मत व्यक्त किया है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. रस निष्पत्ति से क्या तात्पर्य है?
2. भट्टलोलट के उत्पत्तिवाद से तात्पर्य क्या है?
3. 'शंकुक का अनुमितिवाद' पर टिप्पणी लिखिए।
4. भट्टनायक का सिद्धांत क्या है? व्याख्या कीजिए?
5. अभिव्यक्तिवाद का प्रवर्तक आचार्य कौन है? स्पष्ट कीजिए?
6. रस सिद्धांत में साधारणीकरण का स्थान निर्धारित कीजिए?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा, एनपीएच - डॉ. नागेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य-सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

BLOCK-02

भारतीय काव्य संप्रदाय

Block Content

Unit 1: अलंकार संप्रदाय और उसके सिद्धांत

Unit 2: रीति संप्रदाय और उसके सिद्धांत

Unit 3: ध्वनि संप्रदाय और उसके सिद्धांत

Unit 4: वक्रोक्ति संप्रदाय और उसके सिद्धांत

Unit 5: औचित्य संप्रदाय और उसके सिद्धांत

इकाई : 1

अलंकार संप्रदाय और उसके सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- अलंकार शब्द की उत्पति के बारे में समझता है
- अलंकार की परिभाषा एवं स्वरूप जानता है
- अलंकार सिद्धांत के आचार्यों के मत समझने का अवसर मिलता है
- भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों के अलंकार संबंधी विचार से परिचय पा सकता है

Background / पृष्ठभूमि

भारतीय काव्य संप्रदायों में रस के अतिरिक्त शेष संप्रदायों में सबसे पुराना अलंकार संप्रदाय है। आचार्य भरतमुनी ने अपने नाट्य शास्त्र में स्वयं चार अलंकारों की विवेचना की है। फिर भी उन्होंने उसे उतना महत्व नहीं दिया। अलंकारों की अलग रूप से अध्ययन करके अलंकार संप्रदाय की स्थापना आचार्य भामह ने की है। अलंकार संप्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य भामह हैं। 'काव्यालंकार' आचार्य भामह की रचना है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अलंकार संप्रदाय, प्रमुख आचार्य, अलंकार के स्वरूप, काव्यादर्श, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

Discussion / चर्चा

संस्कृत काव्य शास्त्र के कालक्रम की दृष्टि से इस संप्रदाय सबसे प्राचीन है। भामह अलंकारवादी आचार्य थे। अतः इस दृष्टि से विचार किया जाए तो अलंकार संप्रदाय काव्य का प्रथम संप्रदाय माना जा सकता है। अलंकारवादी आचार्यों में भामह, दण्डी, उद्भट, रूद्रट, भोर रूय्यक, जयदेव और अप्पय दीक्षित के नाम लिया जा सकता है। इनके अतिरिक्त अलंकारों पर विचार उन आचार्यों ने भी किया है जो मूलतः अलंकारवादी आचार्य नहीं थे।

- जिस प्रकार आभूषण स्वर्ण से बनते हैं, उसी प्रकार अलंकार भी सुवर्ण (सुंदर वर्ण) से बनते हैं

2.1.1 अलंकार शब्द की उत्पति

अलंकार का शाब्दिक अर्थ होता है कि आभूषण। अलंकार दो शब्दों से मिलकर बनता हैः अलम अ कार। जो किसी वस्तु को अलंकृत करे, वह अलंकार कहलाता है। जिस प्रकार आभूषण स्वर्ण से बनते हैं, उसी प्रकार अलंकार भी सुवर्ण (सुंदर वर्ण) से बनते हैं।

2.1.1.1 अलंकार : परिभाषा एवं स्वरूप

यद्यपि हमने आरंभ में 'अलंकार' शब्द की विवेचना कर दी है, किन्तु अलंकारों के स्वरूप

को सम्यक रूप में ग्रहण करने की दृष्टि से वह पर्याप्त नहीं है। सौंदर्य के उपादान एवं साधन के रूप में अनेक तत्वों का प्रयोग हो सकता है, किन्तु वे सभी 'अलंकार' के क्षेत्र में नहीं आते। अलंकार का सामान्य अर्थ है- आभूषण। आभूषण जिस प्रकार शरीर के अंग नहीं हैं, ऊपर से धारण किये जाने वाले पदार्थ हैं, ठीक उसी प्रकार काव्य में भी अलंकार मूल विषय-वस्तु के अंग न होकर उसकी शैली से संबंधित तत्व हैं।

▶ अलंकार कथ्य न होकर कथनशैली के विशिष्ट प्रकार मात्र हैं

संक्षेप में अलंकार कथ्य न होकर कथन शैली के विशिष्ट प्रकार मात्र हैं। किन्तु अलंकारवादी ऐसा नहीं मानते हैं। उनकी धारणाएँ इस प्रकार हैं-

(क) आचार्यों ने अलंकारों का अनेक प्रकार से वर्णन किया है। स्त्री का सुन्दर मुख भी बिना भूषण के नहीं सजता।"

(ख) दंडी काव्य के सौंदर्य-कारक धर्मों को अलंकार कहते हैं।

(ग) जयदेव "जो अलंकार-शून्य शब्दार्थ में भी काव्यत्व स्वीकार करते हैं, वे चतुर मनुष्य अग्नि में भी अनुक्षणता को स्वीकार करें।" अर्थात् उष्णता का जो संबंध अग्नि से है, वही अलंकार का काव्य से है।

उपर्युक्त उक्तियों में अलंकार को काव्य का स्थिर एवं अनिवार्य तत्व माना गया है जबकि वामन, मम्मट, विश्वनाथ, प्रभृत्ति आचार्यों ने इसका खंडन किया है। आधुनिक युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अलंकारों के स्वरूप की स्पष्ट मीमांसा करते हुए लिखा है- "वस्तु या व्यापार की भावना चमकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूप-रंग या गुण की भावना को उस प्रकार के और रूप-रंग मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्मवाली वस्तुओं को सामने करना पड़ता है। कभी-कभी बात को घुमा-फिरा कर भी कहना पड़ता है। इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं।"

▶ उष्णता का जो संबंध अग्नि से है, वही अलंकार का काव्य से है

2.1.1.2 अलंकार सिद्धांत के प्रमुख आचार्य

अलंकार संप्रदाय के प्रमुख आचार्य या व्याख्याता भामह (छठी शताब्दी का पूर्वार्ध), दंडी (सातवीं शताब्दी), उद्भट (आठवीं शताब्दी) तथा रूद्रट (नवीं शताब्दी का पूर्वार्ध) हैं। भामह का अनुकरण दंडी ने किया, और भामह तथा दंडी का उद्भट ने। उपरोक्त सभी आचार्य अलंकार को ही 'काव्य की आत्मा' मानते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में यही संप्रदाय सबसे प्राचीन माना जाता है।

▶ भामह का अनुकरण दंडी ने किया

2.1.1.3 अलंकार सिद्धांत के आचार्यों की मूल स्थापनाएँ

2.1.1.3.1 आचार्य भामह

भामह कश्मीर के निवासी थे। बलदेव उपाध्याय ने भामह का समय छठी शताब्दी का पूर्वार्ध निश्चित किया है। भामह ने ही अलंकार को नाट्यशास्त्र की परतंत्रता से मुक्त कर एक स्वतंत्र शास्त्र या संप्रदाय के रूप में प्रस्तुत किया और अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्व घोषित किया। भामह के अनुसार 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों का सहभाव काव्य है। इन्होंने 'काव्यालंकार' (भामहालंकार) नामक ग्रन्थ की रचना की, जो छह परिच्छेदों में विभक्त है।

▶ शब्द और अर्थ दोनों का सहभाव काव्य है

भामह ने अलंकार को काव्य का आवश्यक आभूषक तत्व मानते हुए कहा है-

'न कान्तमपि विभूषणं विभाति वनिता मुखम्।'

अर्थात् बिना अलंकारों के काव्य उसी प्रकार शोभित नहीं हो सकता जिस प्रकार किसी सुंदर स्त्री का मुख बिना अलंकारों के शोभा नहीं पाता। इन्होंने 38 अलंकारों का वर्णन किया है जिसमें दो शब्दालंकार (अनुप्रास और यमक) तथा 36 अर्थालंकार हैं। भामह ने अलंकार का मूल (प्राण) वक्रोक्ति को माना है। भामह ने 'रीति' को न मानकर काव्य गुणों का विवेचना किया है, भरत मुनि द्वारा वर्णित दस गुणों के स्थान पर तीन गुणों (माधुर्य, ओज तथा प्रसाद) का वर्णन किया है। भामह को अभाववादी कहा जाता है क्योंकि उन्होंने काव्य में ध्वनि की सत्ता को स्वीकार नहीं किया।

▶ अलंकार का मूल (प्राण) वक्रोक्ति

2.1.1.3.2 आचार्य दंडी

आचार्य दंडी अलंकार संप्रदाय के दूसरे प्रमुख आचार्य हैं। दंडी का समय सातवीं शताब्दी स्वीकार किया जाता है। ये दक्षिण भारत के निवासी थे। दंडी पल्लव नरेश सिंह विष्णु के सभा पण्डित थे। इन्होंने 'काव्यादर्श' नामक ग्रंथ की रचना की। 'काव्यादर्श' में चार भाग (परिच्छेद) तथा लगभग 650 श्लोक है। दंडी प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने वैदर्भी तथा गौड़ी रीति के पारस्परिक अंतर को स्पष्ट किया तथा इसका संबंध गुण से स्थापित किया।

▶ आचार्य दंडी ने 'काव्यादर्श' नामक ग्रंथ की रचना की

आचार्य दंडी ने अलंकार शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा कि काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहते हैं- 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारन् प्रचक्षते।' दंडी ने 39 अलंकारों का वर्णन किया है जिसमें 4 शब्दालंकार (अनुप्रास, यमक, चित्र, प्रहेलिका) और 35 अर्थालंकार है। दंडी ने अतिशयोक्ति को पृथक अलंकार निरूपित किया है। दंडी प्रबंध काव्य को 'भाविक' अलंकार मानते हैं। बलदेव उपाध्याय दंडी को रीति संप्रदाय का मार्गदर्शक मानते हैं।

▶ काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म ही अलंकार है

2.1.1.3.3 आचार्य उद्भट

उद्भट अलंकार से संबंधित आचार्य थे। इनका समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इन्हें कश्मीर के राजा जयापीड का सभा पण्डित माना है। आचार्य उद्भट ने 'काव्यालंकार सार-संग्रह' नामक ग्रन्थ में अलंकारों का आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक ढंग पर विवेचन किया है। उद्भट ने रसालंकारों में 'समाहित' को स्वीकार किया तथा नाट्य में शांति रस की प्रतिष्ठा की। आचार्य उद्भट ने 41 अलंकारों का वर्णन किया है। श्लेष को सभी अलंकारों में श्रेष्ठ मानते हुए श्लेष के दो प्रकार- शब्द श्लेष तथा अर्थ श्लेष की कल्पना तथा दोनों को अर्थालंकारों में ही परिगणित किया। उद्भट ने पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, काव्य हेतु, काव्य दृष्टांत और संकर नामक नवीन अलंकारों की उद्भावना की। इन्होंने अलंकारों को सर्वप्रथम 6 वर्गों में वर्गीकरण किया।

▶ 'काव्यालंकार सार-संग्रह' नामक ग्रन्थ में अलंकारों का आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक ढंग पर विवेचन

2.1.1.3.4 आचार्य रुद्रट

रुद्रट कश्मीर के निवासी थे तथा इनका समय 9वीं शती का पूर्वार्द्ध स्वीकार किया जाता है। रुद्रट की रचना का नाम 'काव्यालंकार' है। इस ग्रन्थ में 16 अध्याय तथा कुल 74 श्लोक है। आचार्य रुद्रट ने सर्वप्रथम अलंकारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इन्होंने

▶ सर्वप्रथम अलंकारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण

अर्थालंकारों के चार वर्ग- वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष में विभाजित किया। इन्होंने रसवत आदि अलंकारों को अमान्य ठहराकर भामह के समय से रस और भाव को अलंकार के भीतर स्थान देने की त्रुटिपूर्ण परंपरा का परिशोधन किया।

2.1.1.4 भारतीय काव्यशास्त्र के अन्य आचार्यों का अलंकार संबंधी विचार

गैर अलंकारवादी आचार्यों ने भी अलंकार सिद्धात पर अपना मत व्यक्त किया है, जिसमें प्रमुख आचार्यों के विचार निम्नलिखित हैं-

1. आचार्य वामन रीति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हैं। इनके ग्रंथ का नाम 'काव्यालंकारसू-त्रवृत्ति' है। इन्होंने 32 अलंकारों का विवेचन किया है।
2. आचार्य कुंतक ने 20 अलंकारों का वर्णन किया है।
3. आचार्य भोज ने अलंकारों के तीन वर्ग किया- बाह्य, आभ्यंतर और उभय और इन्हें क्रमशः शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा मिश्र या उभयालंकार कहा तथा प्रत्येक के 24-24 भेदों का निरूपण कर कुल 72 अलंकारों का वर्णन किया है।
4. आचार्य मम्मट ने सम, सामानय, विनोक्ति एवं अतद्गुण, इन चार नवीन अलंकारों की उदभावना की। मम्मट ने काव्य-लक्षण में 'अनलंकृति पुनः क्वापि' कह कर काव्य में अलंकारों की अनिवार्य उपयोगिता को समाप्त कर दिया।
5. आचार्य रूय्यक ने अर्थालंकारों के पाँच वर्ग- सादृश्य वर्ग, विरोध वर्ग, श्रृंखला वर्ग, न्यायमल वर्ग (वर्कन्याय मूल, वाक्य न्याय मूल और लोकन्याय मूल) तथा गूढार्थ प्रतीक मान वर्ग किए। इन्होंने उपमा को अलंकारों का मूल माना है।
6. आचार्य जयदेव ने अलंकार-निरूपण की ऋजु एवं संक्षिप्त शैली का प्रवर्तन किया, जिसका अनुसरण रीतिकाल के अनेक कवियों ने किया है।
7. आचार्य विश्वनाथ ने निश्चय तथा अनुकूल दो नवीन अलंकारों का निरूपण किस किया।
8. आचार्य जगन्नाथ ने शब्दालंकारों को अधम काव्य, अर्थालंकारों को मध्यम काव्य तथा गुणीभूत व्यंग और ध्वनि को क्रमशः उत्तम और उत्तमोत्तम काव्य माना है।
9. आनंदवर्धन ने अलंकार का नूतन लक्षण प्रस्तुत करते हुए इसका महत्व और भी कम कर दिया।
10. जयदेव ने अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्व माना है और अलंकार-विहीन रचना को उष्णता-रहित अग्नि की भाँति व्यर्थ माना है।

▶ अलंकारवादी आचार्यों ने अलंकार सिद्धात पर विभिन्न मत व्यक्त किया

इन संस्कृत आचार्यों के परवर्ती काल में हिन्दी में बहुत से ऐसे आचार्य हुए जिन्होंने अलंकार-संप्रदाय का समर्थन किया।

2.1.1.5 काव्य में अलंकार का स्थान

काव्य में अलंकारों के महत्व को लेकर अत्यधिक चर्चायें हुई हैं और इस संदर्भ में आज भी विवाद हो रहे हैं कि अलंकारों का काव्य में क्या स्थान है अथवा इसकी क्या महत्ता है। कुछ विद्वान इसे काव्य का नित्यधर्म मानते हैं और कुछ अनित्यधर्म। इसको नित्यधर्म मानने वाले भगवान व्यास देव ने "अग्निपुराण" में कहा- "अर्थालंकार-रहिता विधवैव सरस्वती।" अर्थात् अर्थालंकारों के बिना सरस्वती विधवा के समान है।

जिस प्रकार आभूषण धारण करने से किसी रमणी की शोभा बढ़ जाती है, ठीक उसी प्रकार

अलंकारों से काव्य की शोभा बढ़ जाती है।

काव्य में अलंकारों का उपयुक्त स्थान निर्धारित करने में तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है -

(1) अलंकारों का प्रयोग शोभा बढ़ाने का साधन है, साध्य नहीं।

(2) अलंकार प्रकृति सौंदर्य की ही शोभा बढ़ाते हैं।

(3) अलंकार का प्रयोग स्वाभाविक रूप से होना चाहिए। कृत्रिम या अस्वाभाविक रूप से प्रयुक्त अलंकार काव्य की शोभा नहीं बढ़ा सकते।

▶ काव्य में अंलकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से होता है, तो यह काव्य के सौंदर्य और प्रभाव में वृद्धि करता है

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

दण्डी का यह कहना कि "काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकरान् प्रचक्षते" अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले सभी धर्म अलंकार हैं। आनंदवर्धन ने गुण एवं अलंकार का भेद भी रस की दृष्टि से किया। इन्होंने गुण को काव्य की शोभा को माना और उसके लिये अलंकार माना। विभिन्न संप्रदायों के विकास के बाद अलंकार का स्थान गौण हो गया। और आचार्य मम्मट ने तो काव्य की परिभाषा में ही "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि" कह कर काव्य से अलंकार की अनिवार्यता ही हटा दी। जयदेव ने कहा- जो व्यक्ति काव्य को अलंकार से रहित स्वीकार करता है, वह अग्नि को उष्णतारहित क्यों नहीं कहता। तात्पर्य यह कि अलंकार काव्य का आधारभूत गुण है। यह सत्या है कि अलंकार काव्य की शोभा है। उचितानुचित का विचार करके काव्य में यदि अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से होता है, तो यह काव्य के सौंदर्य और उसके प्रभाव में वृद्धि करता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. अलंकार शब्द की उत्पति पर विचार कीजिए।
2. अलंकार विषयक आचार्यों के मत का विवेचन कीजिए।
3. काव्य में अलंकार का स्थान निर्धारित कीजिए।
4. अलंकार : परिभाषा एवं स्वरूप का वर्णन कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास- (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जनै
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत- डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

रीति संप्रदाय और उसके सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रीति शब्द की व्युत्पति के बारे में जानता है
- रीति की परिभाषा समझता है
- रीति भेद और रीति गुण से परिचित होता है
- रीति और शैली समझता है

Background / पृष्ठभूमि

यद्यपि रीति को एक स्वतंत्र सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य वामन को ही प्राप्त है, किन्तु यह उनका सर्वथा नूतन सिद्धांत नहीं है। उनसे पूर्व भी अनेक आचार्यों ने रीति की विवेचना विभिन्न रूपों में की थी। आचार्य भरत ने अपने 'नाट्य-शास्त्र' में रीति से मिलते-जुलते शब्द 'प्रवृत्ति' का प्रयोग करते हुए इसके चार भेदों की व्याख्या की है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

काव्यालंकार-सूत्र, वैदर्भी रीति, गौडी रीति, पाञ्चाली रीति, रीति गुण, रीति दोष, महाभाष्य

Discussion / चर्चा

वामन ने अपने 'काव्यालंकार-सूत्र' में रीति को इतना अधिक महत्व प्रदान किया कि उसे काव्य की आत्मा तक घोषित कर बैठे। रीति का लक्षण स्पष्ट करते हुए उन्होंने उसे काक विशिष्टय-रचना रीति' अर्थात् विशेष प्रकार की शब्द-रचना ही रीति है। वह विशेष प्रकार या शब्द-रचना की वह विशेषता क्या है, जिससे रीति का संपादन होता है? उसका उत्तर है- 'विशेषो गुणात्मा' अर्थात् गुण का होना ही विशेषता है। इस प्रकार कहना चाहिए कि वामन काव्य का आधार रीति को तथा रीति का आधार गुण को मानते हैं - अतः 'गुण' ही काव्य का सर्वोत्कृष्ट तत्व सिद्ध होता है।

2.2.1 रीति शब्द की व्युत्पति

'रीति' शब्द 'रीड' धातु से 'क्ति' प्रत्यय मिला देने पर बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ प्रगति, पद्धति, प्रणाली या मार्ग है। परन्तु वर्तमान समय में 'शैली' (स्टाइल) के समानार्थी के रूप में यह अधिक समादृत है।

'रीति' के अर्थ पर विचार करते हुए आचार्य बल्देव उपाध्याय ने लिखा है- "रीति शब्द रीङ्

धातु से क्विन् प्रत्यय के योग से बनता है। अतः रीति का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है मार्ग। पन्थ, वीथि, गति, प्रस्थान-सब रीति के पर्यायवाची शब्द हैं।" काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में भी 'रीति' का प्रयोग दो अर्थों में होता है- एक काव्य-रचना की सामान्य पद्धति, शैली आदि के अर्थ में तथा दूसरा, संस्कृत के एक संप्रदाय विशेष के अर्थ में। वह संप्रदाय है, आचार्य वामन (9वीं शती) द्वारा प्रवर्तित रीति-संप्रदाय।

▶ रीति का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है मार्ग

2.2.1.1 रीति की परिभाषा

काव्य रीति : संस्कृत साहित्य में रीति शब्द का प्रयोग 'वामन' ने किया। रीति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन है। वामन पहले आचार्य हैं जिन्होंने काव्य के संदर्भ में 'आत्मा' शब्द का प्रयोग किया है।

- वामन ने रीति को काव्य के विशेष तत्व के रूप में प्रतिपादित करते हुए कहा है:-

  "विशिष्टा पद रचना रीतिः"

- अर्थात् रीति कोरी पद रचना न होकर विशिष्ट पद रचना है और 'विशेष' शब्द को इस प्रकार स्पष्ट किया है:-

  "विशेषो गुणात्मा, रीतिरात्मा काव्यस्य"

▶ वामन पहले आचार्य काव्य के संदर्भ में 'आत्मा' शब्द का प्रयोग किया है

- अर्थात् काव्य में विशिष्टता गुणों के संयोजन से आती है। गुण रीति का सर्वस्व है और गुणों से युक्त रीति ही काव्य की आत्मा है।

  वामन के पूर्ववर्ती आचार्य भरत व भामह ने गुणों का संबंध काव्य के सामान्य स्वरूप से माना है।

2.2.1.2 रीति भेद

काव्य रीति के प्रकारः आचार्य वामन ने रीतियों की संख्या तीन बतलाई है जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है:-

1. वैदर्भी रीति
2. गौडी रीति
3. पाञ्चाली रीति

वामन का दृष्टिकोण विशुद्ध सौंदर्यवादी था, अतः उन्होंने उन सब गुणों को जिनसे काव्य सौंदर्य की सृष्टि हो सकती है, रीति के आधारभूत तत्वों के रूप में संकलित किया है। वामन ने एक ओर यह स्पष्ट किया है कि सौंदर्य दोषों के त्याग तथा गुणों और अलंकारों के योग से उत्पन्न होता है, तो दूसरी ओर उन्होंने अपने ग्रन्थ में गुण, दोष और अलंकार का निरूपण विस्तार से अलग-अलग अध्यायों में किया। प्रायः हिन्दी के अनेक विद्वान-रीति-सिद्धांत की चर्चा करते समय केवल गुणों तक ही अपना विषय सीमित रखते हैं जबकि वास्तविकता यह है कि दोष और अलंकार भी इस सिद्धांत में महत्वपूर्ण अंग है। इन तीनों का क्रमशः विवेचन करते हुए इस सिद्धांत को समझने का प्रयत्न करेंगे।

▶ सौंदर्य दोषों के त्याग तथा गुणों और अलंकारों के योग से उत्पन्न होता है

2.2.1.3 वैदर्भी

"माधुर्य व्यंजक वर्णों से युक्त, दीर्घ समासों से रहित अथवा छोटे समासों वाली ललितपद रचना का नाम वैदर्भी है, यह रीति श्रृंगार आदि ललित एवं मधुर रसों के लिए अधिक अनुकूल

होती है"। विदर्भ देश के कवियों के द्वारा अधिक प्रयोग में आने के कारण इनका नाम वैदर्भी है। आचार्य विश्वनाथ ने इनकी विशेषताओं के आधार पर इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है-

"माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते"।।

▶ विदर्भ देश के कवियों के द्वारा अधिक प्रयोग में आने के कारण इनका नाम वैदर्भी है

माधुर्यव्यंजक वर्णों के द्वारा की हुई समास रहीत अथवा छोटे समासों से युक्त मनोहर रचना को वैदर्भी कहते हैं।

2.2.1.4 गौडी

यह ओजपूर्ण शैली है। "ओज प्रकाश वर्णों से संपन्न, दीर्घ समास वाली शब्दाडम्बरवती रीति गौडी होती है"। दण्डी इसमें दस गुणों का समावेश नहीं मानते हैं, वामन गौडी रीति के स्वरूप का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि इसमें ओज और कान्ति गुणों का प्राधान्य तथा समास की बहुलता रहती है। मधुरता तथा सुकुमारता का इसमें अभाव रहता है। रूद्रट ने इस को दीर्घ समास वाली रचना माना है जो कि रौद्र, भयानक, वीर आदि उग्ररसों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त होती है।

▶ गौडी रीति का दूसरा नाम "परूषा"

इस रीति की रचना में उद्दीपक वर्णों का प्रयोग होता है, जिससे शौर्य भावना का आविर्भाव होता है। इसी गौडी रीति का दूसरा नाम "परूषा" है। मम्मट के अनुसार इसका लक्षण इस प्रकार है- "ओजः प्रकाशकैस्तुपरूषा"। आचार्य आनंद वर्धन इसे "दीर्घसमासवृत्ति" कहते हैं।

2.2.1.5 पंचाली

"ओज एवं कांति समन्वित पदों की मधुर सुकुमार रचना को 'पांचाली' कहते हैं"। पंचाली रीति का उल्लेख भामह तथा दण्डी ने नहीं किया है। इस रीति का सबसे पहले उल्लेख वामन ने किया था। वामन के अनुसार यह माधुर्य और सुकुमारता से संपन्न रीति और अगठित, भावाशिथिल, छायायुक्त (कान्तिरहित) मधुर और सुकुमार गुणों से युक्त होती है। माधुर्य और सौकुमार्यपौपंन्ना पांचाली रीति होती है।

▶ पंचाली रीति का सबसे पहले उल्लेख वामन ने किया

2.2.2 रीति गुण

गुणों को सर्वाधिक महत्व प्रदान करने का श्रेय वामन को ही है। लेकिन उनसे पूर्व अनेक आचार्य इनकी चर्चा कर चुके थे। आचार्य भरत ने दोषों के विपर्यय रूप ऐसे तत्वों को, जो काव्यशैली को समृद्ध करते हैं, गुण माना था। इन गुणों की गणना भी उन्होंने इस प्रकार की थी- 1. श्लेष, 2. प्रसाद, 3. समता, 4. समाधि, 5. माधुर्य, 6. ओज, 7. पद-सौकुमार्य, 8. अर्थ-व्यक्ति, 9. उदारता एवं 10. कान्ति। आगे चलकर दण्डी ने भी दस गुणों की विस्तृत विवेचना की है किन्तु उनका कोई सामान्य लक्षण निर्धारित नहीं किया। वस्तुतः गुणों का लक्षण स्पष्ट भी सर्वप्रथम वामन ने ही किया। उनके विचार से 'काव्य के शोभाकारक धर्म गुण कहलाते हैं (काव्य-शोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः)। स्पष्ट ही यह लक्षण इतना व्यापक है कि इसके अनुसार वे सारे तत्व जिससे कि काव्य-सौंदर्य की सृष्टि होती है, गुणों के अंतर्गत आ जाते हैं।

▶ गुणों को सर्वाधिक महत्व प्रदान करने का श्रेय वामन को है

2.2.3 रीति दोष

रीति का दूसरा महत्वपूर्ण आधार दोष है। जब तक कोई भी रचना दोषशून्य नहीं होगी तब तक उसमें गुणों का समन्वय भी सौंदर्य उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सकेगा, अतः

साहित्यकारों के लिए दोषों का ज्ञान भी उतना ही अपेक्षित है जितना गुणों का। काव्यगत दोषों की चर्चा वामन से पूर्व भरत, भामह और दंडी भी कर चुके थे, किन्तु उनकी कोई सामान्य परिभाषा किसी ने नहीं दी। वामन के अनुसार दोष की परिभाषा है "गुणविपर्ययात्माना" अर्थात् गुण के विपर्यय का नाम दोष है या यों कहिए कि जो गुण का उल्टा है वही दोष है।

▶ साहित्यकारों के लिए दोषों का ज्ञान भी उतना ही अपेक्षित है जितना गुणों का

आचार्य भरत ने दस दोष माने थे- 1. गूढार्थ (क्लिष्ट अर्थ), 2. अर्थान्तर (अवर्ण्य का वर्णन), 3. अर्थहीन, 4. भिन्नार्थ, 5. एकार्थ (एक अर्थ के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग), 6. अभिप्लुतार्थ वामन ने इन्हें चार भेदों पद-दोष, पदार्थ-दोष, वाक्य-दोष और वाक्यार्थ दोष में वर्गीकृत करते हुए इनकी संख्या बीस मानी है।

2.2.4 अलंकार

गुण और दोष के अनंतर अब हम रीति के तीसरे महत्वपूर्ण अंग अलंकार को लेते हैं। वामन अपने सिद्धांत को नवीन एवं स्वतंत्र घोषित करते हुए भी अलंकार की उपेक्षा नहीं कर सके। यही नहीं, उन्होंने एक स्थान पर तो अलंकार को व्यापक अर्थ में- सौंदर्य के अर्थ में - ग्रहण करते हुए उसे ही काव्य का सर्वश्रेष्ठ तत्व मान लिया- "काव्यं ग्राह्यमलंकारात। सौंदर्य मलंकारः।"

▶ रीति के तीसरे महत्वपूर्ण अंग अलंकार

किन्तु साथ ही ये अलंकार को उसके संकुचित अर्थ में ग्रहण करते हैं। इसीलिए वे लिखते हैं कि काव्य में सौंदर्य दोषों के अभाव व गुण और अलंकारों के योग से उत्पन्न होता है। इससे स्पष्ट है कि वामन चाहे अलंकारवादी न हों; किन्तु अलंकार के महत्व को वे अवश्य स्वीकार करते थे। पहले उन्होंने सब अलंकारों को दो वर्गों में विभाजित किया है- शब्दालंकार और अर्थालंकार। वस्तुतः वामन का अलंकार-संबंधी विवेचन भी पर्याप्त तर्क-संगत एवं प्रौढ़ है।

2.2.5 रीति और शैली

रीति और शैली में बहुत अंतर नहीं है। शैली विचारों का परिधान है, यह उपयुक्त शब्दावली का प्रयोग है या कहें कि अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। शैली भाषा का व्यक्तिगत प्रयोग है।

▶ शैली विचारों का परिधान है और शैली भाषा का व्यक्तिगत प्रयोग है

भारतीय काव्यशास्त्र में आचार्य वामन ने रीति संप्रदाय की स्थापना करके रीति को काव्य की आत्मा कहा है। संस्कृत साहित्य में रीति शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। रीति शब्द का प्रथम प्रयोग स्तुति के अर्थ में ऋग्वेद में पाया जाता है। इसके अलावा शैली के अर्थ में रीति शब्द का प्रयोग सबसे पहले पतंजली ने अपने 'महाभाष्य' में किया है। उन्होंने 'एषा ह्याचार्यस्य शैली' में लिखा है, जिसका अर्थ है- यह आचार्य की शैली अर्थात् कथन का ढंग है।

2.2.6 रीति और पाश्चात्य शैली

भारतीय रीति की भाँति पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में भी शैली की विवेचना बराबर होती रही है। यद्यपि अब शैली का अर्थ रीति से भिन्न हो गया है, किन्तु प्राचीन युग में दोनों का विवेचन एवं वर्गीकरण जिस ढंग से हुआ है उसमें परस्पर गहरा साम्य दृष्टिगोचर होता है। प्रसिद्ध ग्रीक आचार्य प्लेटो ने शैली के तीन भेद किये थे- (1) सहज सरल, (2) विचित्र, (3) मिश्र। इसी प्रकार अरस्तू ने शैली के दो मूल गुण बताये थे- स्पष्टता और औचित्य। साथ ही उन्होंने एक अन्य स्थान पर शैली के चार दोषों का भी आख्यान किया। अरस्तू के ये दोष भारतीय आचार्यों के दोष-निरूपण के अनुकूल ही हैं।

▶ प्रसिद्ध ग्रीक आचार्य प्लेटो ने शैली के तीन भेद किये थे

उपर्युक्त आचार्यों के अतिरिक्त और भी अनेक पाश्चात्य आचार्यों ने शैली का विवेचन रीति से मिलता-जुलता किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शैली संबंधी प्राचीन पाश्चात्य विवेचन भारतीय रीति के सर्वथा अनुकूल है।

आधुनिक युग तक आते-आते पाश्चात्य विद्वानों के शैली- संबंधी दृष्टिकोण में पर्याप्त अंतर आ गया। उन्नीसवीं शताब्दी में वर्ड्सवर्थ तथा अन्य साहित्यकारों ने सहज-स्वाभाविक शैली के पक्ष का प्रचार किया तथा पेष्टापूर्वक प्रयुक्त शैली को साहित्य के लिए अनुपयुक्त सिद्ध किया। दूसरी ओर क्रोचे के अभिव्यंजनावाद ने भी सहज-स्वाभाविक अभिव्यंजना को ही काव्य के लिए वांछनीय सिद्ध किया। इस प्रकार पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में शैली व्यक्ति-सापेक्ष हो अर्थात् हर व्यक्ति की अपनी शैली होती है-इस तथ्य को मान लिया गया। ऐसी स्थिति में शैली का सामान्य रूप निश्चित करना स्वतः ही अनावश्यक हो गया। यद्यपि भारतीय विद्वानों में से भी अनेक ने शैली को व्यक्ति-सापेक्ष माना है, फिर भी उन्होंने उसके सामान्य गुणों की उपेक्षा नहीं की।

▶ पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में शैली व्यक्ति-सापेक्ष हो अर्थात् हर व्यक्ति की अपनी शैली होती है

2.2.7 रीति-संप्रदाय का महत्व

रीति संप्रदाय के सिद्धांतों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेने के बाद अब हम उसका मूल्यांकन कर सकते हैं। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि वामन ने जो मत प्रकट किया वह उनका अपना नहीं है। जैसा कि पहले संकेत किया गया है, उनके सिद्धांत मुख्यतः गुण, दोष और अलंकारों पर आधारित हैं और ये तीनों ही पूर्व विद्वानों द्वारा विवेचित हैं। उनका गुण-दोषों का विवेचन तो बहुत कुछ भरत के नाट्यशास्त्र पर आधारित है जबकि अलंकार संबंधी सारी सामग्री भामह और दण्डी से ली है। इस क्षेत्र में वामन की मौलिकता यह है कि उन्होंने गुण और दोषों का, शब्द और अर्थ के आधार पर अलग-अलग किया तथा गुणों को अलंकार से अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास किया।

▶ गुणों को अलंकार से अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

आचार्य वामन ने एक नये संप्रदाय के प्रवर्तन का साहस किया। उन्होंने अल्प शक्ति के बल पर ही महान कार्य करने का प्रयास किया। उनकी रीति काव्य की आत्मा भले ही न बन पाए, किन्तु उसका काव्य से कोई-न-कोई संबंध तो है ही। कम-से-कम जो लोग शैली पक्ष की सर्वथा उपेक्षा करते हैं, उनके लिए तो वामन का मत चेतावनी देने के लिए पर्याप्त है। डॉ. नगेन्द्र के मत में- "वाणी के विना अर्थ गूँगा है। शैली के अभाव में भाव उस कोकिल के समान असहाय है जिसे विधाता ने हृदय की मिठास देकर भी रसना नहीं दी। इस दृष्टि से शैली तत्व की अनिवार्यता असंदिग्ध है और रीतिवाद ने उस पर बल देकर काव्य-शास्त्र का निःसंदेह उपकार ही किया है।"

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. रीति शब्द की व्युत्पति के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. रीति की परिभाषा देकर भेदों का वर्णन कीजिए।
3. रीति गुण क्या है?
4. रीति संप्रदाय का महत्व क्या हैं?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 3

ध्वनि संप्रदाय और उसके सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- ध्वनि शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- ध्वनि की परिभाषाएँ समझता है
- ध्वनि और शब्द शक्ति जनता है
- ध्वनि के आधार पर काव्य के भेदों से परिचय होता है

Background / पृष्ठभूमि

भारतीय काव्य-संप्रदायों में ध्वनि-संप्रदाय का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ आनंद वर्धन द्वारा रचित 'ध्वन्यालोक' है किन्तु स्वयं आनंद वर्धन ते एक स्थान पर लिखा है- 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरित बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः' जिससे पता चलता है कि ध्वनि की परंपरा उनसे पहले भी रही है। फिर भी आनंद वर्धन से पूर्व का कोई ग्रंथ न मिलने के कारण ध्वनि की प्रतिष्ठा एवं उसकी परंपरा के प्रवर्तक का श्रेय उन्हें ही दिया जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

ध्वनि शब्द की व्युत्पत्ति, ध्वन्यते इति ध्वनि, व्यंग्यार्थ एवं वाच्यार्थ, ध्वनि की प्रधानता, शब्द-शक्ति, गुणीभूतव्यंग्य काव्य

Discussion / चर्चा

ध्वनि-संप्रदाय के अनुसार काव्य की आत्मा ध्वनि है तथा ध्वनि का संबंध व्यंजना-शक्ति से है- अतः ध्वनि-सिद्धांत को सम्यक रूप से समझने के लिए पहले शब्द-शक्तियों का थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर लेना उचित होगा। भारतीय शास्त्रों में भाषा का अर्थ सूचित करने की क्षमता को शक्ति या वृत्ति के नाम से पुकारा गया है। इन शक्तियों की गणना विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है- जैसे अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, तात्पर्य, रसना, भावना, भोग आदि। इनमें से प्रथम तीन शब्द-शक्तियाँ हैं, चतुर्थ का संबंध शब्द से न होकर वाक्य से है तथा तीन काव्य की ही विशिष्ट शक्तियाँ हैं जो अर्थ के भावन या रसास्वादन में योग देती हैं।

2.3.1 ध्वनि शब्द की व्युत्पत्ति

भारतीय साहित्य में काव्य का प्रधान गुण ध्वनि माना गया है। अन्य सिद्धांतों की भांति ध्वनि सिद्धांत का जन्म भी उसके प्रतिष्ठापक अथवा सर्वप्रथम आनंद वर्धनाचार्य ने नवम शब्दावली में, ध्वनि के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। स्वयं ध्वनिकार ने ही अपने पहले छन्द में इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है।

"काव्यस्यात्मा ध्वनिरित बुधार्यः समाम्नातपूर्वः"

▶ व्याकरणशास्त्र में ध्वनि को स्फोट व्यंजक माना गया है

अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है ऐसा मेरे पूर्ववर्ती विद्वानों का भी मत है वास्तव में इस सिद्धांत के मूल संकेत उनके समय से बहुत पहले वैयाकरणों के सूत्रों में विस्फोट आदि के विवेचन में मिलता है।

ध्वनि का व्युत्पत्तिपरक अर्थ

'ध्वनि' शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की जा सकती है-

(1) 'ध्वन्यते इति ध्वनिः' अर्थात् जिससे ध्वनन होता है, उसे ध्वनि कहते हैं।

(2) 'ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः' अर्थात् जिसके द्वारा ध्वनित किया जाता है वह ध्वनि है।

▶ ध्वनि शब्द का आविष्कार संस्कृत व्याकरणशास्त्र से माना जाता है

(3) 'ध्वननं ध्वनिः' अर्थात् जिससे ध्वनन हो, वह ध्वनि है।

(4) 'ध्वन्यते स्मिन्निति' अर्थात् जिससे वस्तु, रस,अलंकार आदि ध्वनित हों, उसे ध्वनि कहते हैं।

2.3.1.1 ध्वनि की परिभाषा

ध्वनि की परिभाषा देते हुए ध्वन्यालोककार ने लिखा है- "जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके प्रतीयमान अर्थ को प्रकाशित करते हैं, उस काव्य-विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है।" इसका अभिप्राय यह है कि ध्वनि में व्यंग्यार्थ (प्रतीयमान) अर्थ तो होता ही है, किन्तु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है; उस प्रतीयमान अर्थ का वाच्यार्थ से अधिक महत्वपूर्ण होना अपेक्षित है। अथवा यों कहिए कि जहाँ व्यंग्यार्थ प्रमुख एवं वाच्यार्थ गौण हो, वहीं ध्वनि मानी जा सकती है। वास्तव में सौंदर्य के आधार पर ही व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से प्रधान हो सकता है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक सुन्दर हो, वहीं ध्वनि का अस्तित्व स्वीकार किया जाएगा। किन्तु साथ ही, आनंदवर्धन ने दूसरी स्थिति की भी पूर्ण उपेक्षा नहीं की-ऐसा काव्य जहाँ कि व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की तुलना में कम सुन्दर हो तथा वह वाच्यार्थ का अंग बन जाता हो, उसे उन्होंने 'गुणीभूत व्यंग्य' की संज्ञा दी है और जहाँ व्यंग्यार्थ अस्फुट रहता है, उसे 'चित्र काव्य' कहा है। इस प्रकार काव्य की तीन श्रेणियाँ हुई-ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र, जो क्रमशः उत्तम, मध्यम एवं अधम कोटि के काव्य को सूचित करती है।

▶ काव्य की तीन श्रेणियाँ हुई- ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र

2.3.1.2 ध्वनि के आधार पर काव्य के भेद

▶ काव्य की चरम सिद्धि रस है और उस रस का अनिवार्य वाहक है ध्वनि

ध्वनि सिद्धांत एक सार्वजनीन सिद्धांत हैं और काव्य के मूल तत्व को आत्मसात् किये हुए है। इस सिद्धांत के सन्दर्भ में संक्षेप में कहा जा सकता है कि काव्य की चरम सिद्धि रस है और उस रस का अनिवार्य वाहक है ध्वनि। आचार्यों ने ध्वनि के अनेक भेद किये हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से ध्वनि के तीन भेद हैं- रसादिध्वनि, वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि।

2.3.1.3 ध्वनि की प्रधानता

अप्रधानता की दृष्टि से काव्य के तीन भेद हैं- ध्वनिप्रधान काव्य (उत्तम काव्य), गुणीभूतव्यंग्य काव्य(मध्यम काव्य) और चित्रकाव्य (अवर काव्य)। जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ प्रधान होता है, वह ध्वनिप्रधान उत्तम काव्य है। जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा

▶ ध्वनिप्रधान उत्तम काव्य है

व्यंग्यार्थ गौण या कम चमत्कारक होता है, वह गुणीभूतव्यंग्य नामक मध्यम काव्य है और जिस काव्य में व्यंग्यार्थ नहीं होता, वह चित्रकाव्य नामक अवर या अधम काव्य है। व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ पर आश्रित रहता है अतः ध्वनि भी अभिधा और लक्षणा पर आधारित है।

2.3.1.4 शब्द-शक्ति (Word-Power) की परिभाषा

शब्द का अर्थ बोध करानेवाली शक्ति 'शब्द शक्ति' कहलाती है। शब्द-शक्ति को संक्षेप में 'शक्ति' कहते हैं। इसे 'वृत्ति' या 'व्यापार' भी कहा जाता है।

सरल शब्दों में- मिठाई या चाट का नाम सुनते ही मुँह में पानी भर आता है। साँप या भूत का नाम सुनते ही मन में भय का संचार हो जाता है। यह प्रभाव अर्थगत है। अतः जिस शक्ति के द्वारा शब्द का अर्थगत प्रभाव पड़ता है वह शब्दशक्ति है।

▶ जो सुनाई पड़े वह शब्द है तथा उसे सुनकर जो समझ में आवे वह उसका अर्थ है

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्य चिन्तामणि ने लिखा है कि "जो सुन पड़े सो शब्द है, समुझि परै सो अर्थ" अर्थात् जो सुनाई पड़े वह शब्द है तथा उसे सुनकर जो समझ में आवे वह उसका अर्थ है। स्पष्ट है कि जो ध्वनि हमें सुनाई पड़ती है वह 'शब्द' है, और उस ध्वनि से हम जो संकेत या मतलब ग्रहण करते है वह उसका 'अर्थ' है।

2.3.1.5 शब्द शक्ति के प्रकार

▶ वाच्यार्थ कथित होता है, लक्ष्यार्थ लक्षित होता है और व्यंग्यार्थ व्यंजित, ध्वनित, सूचित या प्रतीत होता है

जितने प्रकार के शब्द होंगे उतने ही प्रकार की शक्तियाँ होंगी। शब्द तीन प्रकार के- वाचक, लक्षक एवं व्यंजक होते हैं तथा इन्हीं के अनुरूप तीन प्रकार के अर्थ- वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ होते हैं। शब्द और अर्थ के अनुरूप ही शब्द की तीन शक्तियाँ- अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना होती हैं। वाच्यार्थ कथित होता है, लक्ष्यार्थ लक्षित होता है और व्यंग्यार्थ व्यंजित, ध्वनित, सूचित या प्रतीत होता है। शब्द में अर्थ तीन प्रकार से आता है। अर्थ के जो तीन स्त्रोत हैं उन्हीं के आधार पर शब्द की शक्तियों का नामकरण किया जाता है।

2.3.1.6 प्रक्रिया या पद्धति के आधार पर शब्द-शक्ति तीन प्रकार के होते हैं-

(1) अभिधा (Literal Sense of a Word)

(2) लक्षणा (Figurative Sense of a Word)

(3) व्यंजना (Suggestive Sense of a Word)

▶ अभिधा, लक्षणा, व्यंजना का बोध

अभिधा से मुख्यार्थ का बोध होता है, लक्षणा से मुख्यार्थ से संबद्ध लक्ष्यार्थ का, लेकिन व्यंजना से न मुख्यार्थ का बोध होता है न लक्ष्यार्थ का, बल्कि इन दोनों से भिन्न अर्थ व्यंग्यार्थ का बोध होता है।

2.3.1.6.1 अभिधा (Literal Sense of a Word)

जिस शक्ति के माध्यम से शब्द का साक्षात संकेतित (पहला/ मुख्य/ प्रसिद्ध/ प्रचलित/ पूर्वविदित) अर्थ बोध हो, उसे 'अभिधा' कहते हैं। जैसे- 'बैल खड़ा है।'- इस वाक्य को सुनते ही बैल नामक एक विशेष प्रकार के जीव को हम समझ लेते हैं, उसे आदमी या किताब नहीं समझते।

यहाँ 'बैल' वाचक शब्द है जिसका मुख्यार्थ विशेष जीव है। परंपरा, कोश, व्याकरण आदि

▶ शब्द का साक्षात संकेत का बोध कराता है

से यह अर्थ पूर्वविदित (पहले से मालूम) है। यानी शब्द और उसके अर्थ के बीच किसी प्रकार की बाधा नहीं है।

2.3.1.6.2 लक्षणा (Figurative Sense Of a Word)

अभिधा के असमर्थ हो जाने पर जिस शक्ति के माध्यम से शब्द का अर्थ बोध हो, उसे 'लक्षणा' कहते हैं।

▶ अभिधा के असमर्थ हो जाने पर जिस शक्ति के माध्यम से शब्द का अर्थ बोध कराता है वह लक्षणा है

लक्षणा की शर्तें: लक्षणा के लिए तीन शर्तें है-

- इसमें मुख्य अर्थ या अभिधेय अर्थ लागू नहीं होता है वह बाधित (असंगत) हो जाता है।
- जब मुख्य अर्थ बाधित हो जाता है, पर यह दूसरा अर्थ अनिवार्य रूप से मुख्य अर्थ से संबंधित होता है।
- मुख्य अर्थ को छोड़कर उसके दूसरे अर्थ को अपनाने के पीछे या तो कोई रूढ़ि होती है या कोई प्रयोजन।

2.3.1.6.3 व्यंजना (Suggestive Sense Of a Word)

व्यंजना का अर्थ है- "ध्वनित करना या प्रकाशित करना" अर्थात् जिस शब्द शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न तीसरे का अर्थ प्रकाशित हो उसे "व्यंजना शब्द शक्ति" कहते है।

अथवा- जब वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ अपना-अपना अर्थ बोध कराकर शांत हो जाए और जिस शक्ति से अन्य अर्थ का बोध हो, उसे "व्यंजना शब्द शक्ति" कहते है।

▶ मख्यार्थ और लक्ष्यार्थ सें भिन्न तीसरे का अर्थ प्रकाशित

व्यंजना शक्ति केवल अर्थ का संकेत भर देती है, बाकी अर्थ श्रोता या पाठक अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर लगाता है। व्यंजना शक्ति से निकलने वाले अर्थ को "व्यंग्यार्थ" कहते है। तथा अर्थ धारण करने वाले शब्द को "व्यंजक" कहते है।

2.3.1.7 ध्वनि के आधार पर काव्य के भेद

▶ काव्य की चरम सिद्धि रस है और उस रस का अनिवार्य वाहक है ध्वनि

ध्वनि सिद्धांत एक सार्वजनीन सिद्धांत हैं और काव्य के मूल तत्व को आत्मसात् किये हुए है। इस सिद्धांत के सन्दर्भ में संक्षेप में कहा जा सकता है कि काव्य की चरम सिद्धि रस है और उस रस का अनिवार्य वाहक है ध्वनि। आचार्यों ने ध्वनि के अनेक भेद किये हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से ध्वनि के तीन भेद हैं- रसादिध्वनि, वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि।

2.3.1.8 ध्वनि की प्रधानता

▶ प्रधानता की दृष्टि से काव्य के तीन भेद

प्रधानता की दृष्टि से काव्य के तीन भेद हैं- ध्वनिप्रधान काव्य (उत्तम काव्य), गुणीभूतव्यंग्य काव्य(मध्यम काव्य) और चित्रकाव्य (अवर काव्य)। जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ प्रधान होता है, वह ध्वनिप्रधान उत्तम काव्य है। जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ गौण या कम चमत्कारक होता है, वह गुणीभूतव्यंग्य नामक मध्यम काव्य है और जिस काव्य में व्यंग्यार्थ नहीं होता, वह चित्रकाव्य नामक अवर या अधम काव्य है।

2.3.1.8.1 ध्वनिप्रधान काव्य (उत्तम काव्य)

आचार्य मम्मट ने ध्वनि के शुद्ध 51 भेद बताए हैं। ध्वनि के इन भेदोपभेदों के आधार पर

▶ रस, अलंकार और वस्त- ये तीन वस्तुएँ जहाँ ध्वनित होकर व्यक्त होती हैं, वहाँ ध्वनि का विषय होता है

यह स्पष्ट होता है कि रस, अलंकार और वस्तु- ये तीन वस्तुएँ जहाँ ध्वनित होकर व्यक्त होती हैं, वहाँ ध्वनि का विषय होता है। इन तीनों को ध्वनित करने वाला वाचक अर्थ अप्रधान होता है और ध्वन्यर्थ मुख्य होता है। आनंदवर्धन ने यह सिद्ध किया कि ध्वनि एक ऐसा तत्व है जो स्फुट या अस्फुट रूप में सभी प्रकार के काव्य में विद्यमान होता है।

2.3.1.8.2 गुणीभूतव्यंग्य काव्य(मध्यम काव्य)

कहीं कहीं ऐसा होता है कि ध्वनि प्रधान न होकर गौण होती है। ऐसे स्थान पर आनंदवर्धन के अनुसार काव्य का दूसरा भेद-गुणीभूतव्यंग्यकाव्य होता है।

▶ काव्य का दूसरा भेद- गुणीभूतव्यंग्यकाव्य

गुणीभूतव्यंग्यकाव्य के आठ भेद हैं-

1. अगूढ़ (जिसमें व्यंग्य की प्रतीति सहजता से हो जाती है)
2. अपरांग (जहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ एक दूसरे के अंग हों)
3. वाच्यसिद्ध्यंग (जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की सिद्धि में अंग बन जाए)
4. अस्फुट (जहाँ व्यंग्य गूढ. हो)
5. सन्दिग्धप्रधान (वाच्यार्थ प्रधान है या व्यंग्यार्थ - यह सन्देह हो)
6. तुल्यप्रधान (वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का समान महत्व हो)
7. काक्वाक्षिप्त (कण्ठध्वनि से व्यंग्यार्थ प्रकट हो)
8. असुन्दर (जहाँ व्यंग्य में सौंदर्य न हो।

2.3.1.8.3 अवर या चित्रकाव्य

▶ व्यंग्यार्थ की अपेक्षा वाच्यार्थ प्रधान

तीसरे प्रकार के काव्य है अवर या चित्रकाव्य, जिसमें व्यंग्यार्थ की अपेक्षा वाच्यार्थ प्रधान होता है, वह अवर या चित्रकाव्य है। इसके दो भेद हैं- शब्दचित्र और अर्थचित्र। प्रायः शब्दालंकार शब्दचित्र और अर्थालंकार अर्थचित्र के अंतर्गत आ जाते हैं।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

ध्वनि संप्रदाय में अन्य संप्रदायों की भाँति कई त्रुटियाँ और असंगतियाँ भी हैं। एक ओर ध्वनिकार प्रतीयमान अर्थ को ही काव्य की आत्मा मानते हैं तो दूसरी ओर ध्वनि के प्रतीयमान अर्थ के अतिरिक्त पाँच अन्य अवयव भी सम्मिलित कर लिये गये हैं। वस्तुतः काव्य की आत्मा वह चारुत्व या सौंदर्य ही है जिसका उल्लेख बार-बार ध्वन्यालोककार द्वारा हुआ है तथा ध्वनि, अलंकार, रीति आदि ये सब उसी चारुत्व की उपलब्धि के साधन मात्र हैं। ध्वनि का स्थान साधनों में महत्वपूर्ण है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. प्रक्रिया या पद्धति के आधार पर शब्द-शक्ति कितने प्रकार के होते हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. ध्वनि शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में टिप्पणी लिखिए।
3. ध्वनि की परिभाषाएँ लिखो।
4. ध्वनि और शब्द शक्ति पर लेख लिखिए।
5. ध्वनि के आधार पर काव्य के कितने भेद हैं? स्पष्ट कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 4

वक्रोक्ति संप्रदाय और उसके सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- वक्रोक्ति की परिभाषा समझता है
- वक्रोक्ति का महत्व समझता है
- साहित्य में वक्रोक्ति का प्रयोग समझता है

Background / पृष्ठभूमि

वक्रोक्ति का अर्थ है "वह उक्ति जिसमें वक्रता हो" वक्रता का शाब्दिक अर्थ है, टेढ़ापन, असामान्य, विचित्र आदि। वक्रोक्ति-संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक ने वक्रता का अर्थ 'प्रसिद्ध कथन से भिन्न' अर्थात् असामान्य या विचित्र ही किया है। अस्तु, वक्रोक्ति संप्रदाय के अनुसार काव्य का सौंदर्य उक्ति की विशिष्टता व विचित्रता में है तथा ऐसी उक्ति ही काव्य की आत्मा है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

वक्रोक्तिजीवितम्, प्रशंसनीय गुण, लोकातिक्रांतगोचरं वचनम्

Discussion / चर्चा

आचार्य कुन्तक ने लगभग दसवीं शताब्दी में अपने नये मत की स्थापना करते हुए 'वक्रोक्तिजीवितम्' की रचना की। इस ग्रंथ में प्रतिपादित आधारभूत सिद्धांत चाहे हमें स्वीकार्य हो या न हो, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि आचार्य कुन्तक में पर्याप्त प्रतिभा एवं नूतन विवेचन की क्षमता थी। यद्यपि परवर्ती विद्वानों ने वक्रोक्ति-संप्रदाय को अपेक्षित महत्व प्रदान नहीं किया। लेकिन मौलिकता एवं व्यापकता की दृष्टि से इसकी देन ध्वनि-संप्रदाय से कम नहीं है।

- कुंतक ने वक्रोक्ति को काव्य के सौंदर्य का आधार मानते हुए इसे काव्य की आत्मा घोषित किया

2.4.1 वक्रोक्ति सिद्धांत

भारतीय काव्यशास्त्र का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य कुंतक थे। कुंतक से पहले वक्रोक्ति को अलंकार मात्र मानते थे परन्तु आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति को विशेष महत्व प्रदान किया। कुंतक ने वक्रोक्ति को काव्य के सौंदर्य का आधार तत्व मानते हुए इसे काव्य की आत्मा घोषित किया।

2.4.1.1 वक्रोक्ति का अर्थ

'वक्रोक्ति' दो शब्दों के मेल से बना है- वक्र + उक्ति। इस प्रकार वक्रोक्ति का सामान्य

▶ वक्रोक्ति सामान्य कथन को आकर्षक और चमत्कारपूर्ण बना देती है

अर्थ है- टेढ़ी उक्ति। साहित्य के क्षेत्र में इसका अर्थ है- किसी भाव को सीधे सपाट शब्दों में न कहकर घुमा फिराकर सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त करना। सामान्य शब्दों में वक्रोक्ति वह अभिव्यंजना शक्ति है जो सामान्य कथन को आकर्षक और चमत्कारपूर्ण बना देती है।

2.4.1.2 कुंतक पूर्व वक्रोक्ति विचार

▶ भामह ने अपने 'काव्यालंकार' में वक्रोक्ति को अत्यंत व्यापक रूप में प्रस्तुत करते हुए इसे सब अलंकारों की जननी माना है

यद्यपि वक्रोक्ति का पूर्ण भाग्योदय दसवीं शताब्दी में कुन्तक के द्वारा ही हुआ, किन्तु इससे पूर्व भी उसका जन्म एवं विकास हो चुका था। वस्तुतः वक्रोक्ति का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं अलंकार-शास्त्र का है। भामह (छठी शती) ने अपने 'काव्यालंकार' में वक्रोक्ति को अत्यंत व्यापक रूप में प्रस्तुत करते हुए इसे सब अलंकारों की जननी माना है। उनके विचारानुसार वक्रोक्ति के अंतर्गत शब्द और अर्थ दोनों की वक्रता सम्मिलित है। यह वक्रोक्ति ही इष्ट (अर्थ) और वाणी (शब्द) की मूल अलंकार है या यों कहिए कि अलंकार की मूल आधार है। साथ ही उन्होंने इसे अतिशयोक्ति का ही पर्यायवाची माना है। यह ध्यान रहे कि भामह अतिशयोक्ति को भी सभी अलंकारों की जननी मानते हैं। इस प्रकार भामह वक्रोक्ति को काव्यत्व का आधारभूत तत्व मान लेते हैं।

आगे चलकर दंडी ने वक्रोक्ति को स्वाभावोक्ति से पृथक मानते हुए इसे भामह की भांति विभिन्न अलंकारों का मूलाधार माना है। किन्तु वामन ने इसे एक विशिष्ट अलंकार मात्र मानकर इसके क्षेत्र को संकुचित कर दिया। वामन के परवर्ती रूद्रट तो वक्रोक्ति के और भी अधिक विरोधी निकले- उन्होंने इसका स्वरूप इतना अधिक संकीर्ण कर दिया कि वह केवल एक शब्दालंकार मात्र रह गई। इस प्रकार भामह से लेकर रूद्रट तक वक्रोक्ति के क्रमिक ह्रास की पूरी एक श्रृंखला चलती रही है। आचार्य आनंदवर्धन ने स्पष्ट शब्दों में लिखा - सैषा।

सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः, कोऽलंकारोऽनया बिना।

▶ वक्रोक्ति के द्वारा अर्थ चमक उठता है

अर्थात् यह सब वही वक्रोक्ति है। इसके द्वारा अर्थ चमक उठता है। कवियों को इसमें विशेष प्रयत्न करना चाहिए। इसके बिना अलंकार है ही क्या?

आचार्य विश्वनाथ ने वक्रोक्ति को प्रशंसनीय गुण मानते हुए बाणभट्ट तथा सुबंधु को वक्रोक्ति में निपुण माना है।

भामह

▶ वक्रोक्ति सभी अलंकारों का मूल है

भामह मूलतः अलंकरवादी आचार्य थे। उन्होंने अपनी रचना 'काव्यालंकार' में वक्रोक्ति को सभी अलंकारों का मूल कहा है। भामह वक्रोक्ति को परिभाषित करते हुए कहते हैं- "लोकातिक्रांतगोचरं वचनम्"

▶ अलंकार रहित काव्य सिर्फ वार्ता है

अर्थात् लोक की सामान्य कथन प्रणाली से भिन्न वक्रोक्ति है। उनका मानना था कि वक्रोक्ति के अभाव में किसी भी अलंकार का प्रयोग संभव नहीं। वे तो यहाँ तक मानते थे कि वक्रोक्ति के बिना काव्य-रचना ही संभव नहीं। वे लिखते हैं- "सर्वत्र वक्र अर्थ ही शोभा पाते हैं। इसी से कविता होती है और इसके बिना अलंकार ही नहीं हो सकते।" अलंकार रहित काव्य को वे मात्र वार्ता मानते थे।

दण्डी

आचार्य दंडी ने अपनी रचना 'काव्यादर्श' में वक्रोक्ति के रूप को और अधिक स्पष्ट किया। उन्होंने संपूर्ण वाङ्गमय को दो रूपों में विभाजित किया- स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति। उनके अनुसार स्वाभावोक्ति में अलंकरण नहीं होता। इसमें किसी वस्तु का साक्षात रूप वर्णन होता है। जबकि वक्रोक्ति में किसी वस्तु का चमत्कार पूर्ण वर्णन किया जाता है। आचार्य दंडी वक्रोक्ति की परिभाषा देते हुए कहते हैं- "वक्रीकृता उक्तिः अर्थात् वाणी का चातुर्य ही वक्रोक्ति है।"

▶ वक्रोक्ति में किसी वस्तु का चमत्कार पूर्ण वर्णन किया जाता है

वामन

वामन मूलतः रीतिवादी आचार्य थे। उनकी रचना का नाम है- काव्यालंकार सूत्रवृत्ति। उन्होंने वक्रोक्ति को परिभाषित करते हुए कहा- "सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्ति" अर्थात् सादृश्य निबंधना लक्षणा ही वक्रोक्ति है।

▶ सादृश्य निबंधना लक्षणा वक्रोक्ति है

आचार्य वामन ने इसे एक विशिष्ट अलंकार घोषित किया और इसे अर्थालंकार की श्रेणी में माना। लेकिन रीतिवादी आचार्य होने के कारण उन्होंने काव्य-सौंदर्य रीति पर आश्रित माना वक्रोक्ति पर नहीं।

रूद्रट

आचार्य रूद्रट ने भी वक्रोक्ति को केवल अलंकार माना लेकिन उन्होंने रीतिवादी आचार्य वामन के विपरीत इसे शब्दालंकार माना। उनका कथन था कि जब कोई व्यक्ति किसी की बात को सुनकर उस में प्रयुक्त शब्दों का वास्तविक अर्थ न लगाकर दूसरा अर्थ लगाता है और वास्तव से भिन्न उत्तर देता है तो वक्रोक्ति अलंकार होता है। आचार्य रूद्र ने वक्रोक्ति के दो भेद माने- काकु वक्रोक्ति तथा श्लेष वक्रोक्ति।

▶ आचार्य रूद्र ने वक्रोक्ति के दो भेद माने

आचार्य आनंदवर्धन

आनंदवर्धन ध्वनिवादी आचार्य हैं। इनकी रचना है- ध्वन्यालोक। इन्होंने वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति का पर्याय कहा और इसे अलंकारों का मूल घोषित किया।

▶ वक्रोक्ति अतिशयोक्ति का पर्याय है

इन्होंने कवि-प्रतिभा तथा विषयवस्तु को वक्रोक्ति चमत्कार का कारण माना है।

आचार्य अभिनवगुप्त

आचार्य अभिनवगुप्त ने वक्रोक्ति का अर्थ 'उत्कृष्ट पद रचना' माना है। उन्होंने सभी अलंकारों को वक्रोक्ति के अंतर्गत समाहित कर दिया।

▶ उत्कृष्ट पद रचना वक्रोक्ति

भोज

आचार्य भोज ने समूचे वाङ्गमय को तीन भागों में बांटा - वक्रोक्ति, रसोक्ति तथा स्वभावोक्ति।

▶ समूचे वांग्मय को तीन भागों में बांटा - वक्रोक्ति, रसोक्ति तथा स्वभावोक्ति

उनके अनुसार उपमा आदि अलंकारों की प्रधानता होने पर वक्रोक्ति होती है। माधुर्य आदि गुणों की प्रधानता होने पर रसोक्ति तथा भाव की प्रधानता होने से स्वाभावोक्ति होती है।

आचार्य मम्मट

आचार्य मम्मट एक रसवादी-ध्वनिवादी आचार्य थे। उन्होंने वक्रोक्ति को एक सामान्य

▶ वक्रोक्ति एक सामान्य अलंकार

अलंकार माना। आगे चलकर रूय्यक तथा अन्य आचार्यों ने भी वक्रोक्ति को मात्र शब्दालंकार घोषित किया। आजकल हिंदी में वक्रोक्ति को एक सामान्य अलंकार के रूप में ही जाना जाता है।

आचार्य कुंतक का वक्रोक्ति सिद्धांत

▶ प्रसिद्ध कथन से भिन्न विचित्र वर्णन शैली वक्रोक्ति

वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रतिपादक आचार्य कुंतक (नौंवी सदी) हैं। उन्होंने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा कहा। आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति की परिभाषा देते हुए कहा - "प्रसिद्ध कथन से भिन्न विचित्र वर्णन शैली वक्रोक्ति है।" वे 'विचित्र' का अर्थ 'वैदग्ध्यजन्य चास्त्रा' से लेते हैं। 'वैदग्ध्य' से कुंतक का अभिप्राय 'कवि कर्म कौशल' है।

आचार्य कुंतक ने भाषा-व्यापार तथा लोक-व्यवहार में प्रचलित अभिधात्मक कथन से भिन्न विचित्र या विलक्षण शैली को वक्रोक्ति माना है। प्रतिभा संपन्न कवि अपने कौशल से यह विचित्रता या विलक्षणता उत्पन्न करता है।

कुंतक ध्वनि सिद्धांत से स्वतंत्र एक वैकल्पिक काव्य योजना का प्रस्ताव करते हैं। उनके लिए, वक्रोक्ति या वैचित्र, अभिव्यक्ति की अद्भुतता से युक्त, कविता का सार है।

'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्'।

आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति के 'सहृदयाह्लादकारिणी' गुण पर भी बल दिया है। आचार्य कुंतक 'वक्रोक्तिजीवितम' में काव्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं-

"शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि व्यापारशालिनी।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यम् तद्विदाह्लादकारिणी।।"

▶ काव्य विद्वानों को आह्लादित करते है

अर्थात् काव्य विद्वानों को आह्लादित करने वाले विचित्र कवि-व्यापार से सुशोभित व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं।

उपरोक्त परिभाषा से वक्रोक्ति के विषय में चार बातें स्पष्ट होते हैं-

(1) वक्रोक्ति भाषा-शास्त्र तथा लोक-व्यवहार में प्रचलित शब्दार्थ से भिन्न होती है।

(2) वक्रोक्ति कवि प्रतिभाजन्य चमत्कार से विलक्षणता प्राप्त करती है।

▶ वक्रोक्ति से संबन्धित चार बातें

(3) वक्रोक्ति कवि व्यवहार से संबद्ध है।

(4) वक्रोक्ति सहृदय के हृदय में आनंद उत्पन्न करने की क्षमता रखती है।

2.4.2 वक्रोक्ति के भेद

यद्यपि आचार्य कुंतक ने काव्य के सभी अनिवार्य तत्व रीति, गुण, अलंकार, वृत्ति, रस आदि सभी का वक्रोक्ति में समावेश किया और वक्रोक्ति को व्यापक और विस्तृत अर्थ प्रदान किया लेकिन काव्यशास्त्र में यह मत स्थिर नहीं हो पाया। अन्य किसी आचार्य ने कुंतक का समर्थन नहीं किया और कालांतर में वक्रोक्ति मात्र एक शब्दालंकार बन कर रह गई। लेकिन आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति के भेदोपभेद देकर इसे व्यवस्थित काव्य सिद्धांत बनाने का प्रयास किया।

आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति के छह भेद स्वीकार किए हैं -

(1) वर्ण-विन्यास वक्रता

(2) पद-पूर्वार्द्ध वक्रता

(3) पद-परार्द्ध वक्रता

(4) वाक्य-वक्रता

(5) प्रकरण-वक्रता

(6) प्रबंध-वक्रता।

▶ कालांतर में वक्रोक्ति मात्र एक शब्दालंकार बन गई

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

वक्रोक्ति के व्यापक रूप में रीति, अलंकार, ध्वनि, रस आदि सभी पूर्व प्रचलित सिद्धांतों का समन्वय किसी न किसी मात्रा में हो जाता है। वक्रोक्ति आचार्य कुन्तक की अद्भुत प्रतिभा, व्यापक दृष्टि एवं व्यवस्थित चिंतन के समन्वय से उद्भूत एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। मौलिकता एवं व्यापकता की दृष्टि से यदि इसे रीति, अलंकार और ध्वनि सिद्धांत से भी अधिक महत्वपूर्ण बता दिया जाय तो अनुचित नहीं होगा।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. वक्रोक्ति की परिभाषा देकर वक्रोक्ति का अर्थ समझाइए।
2. कुंतक के पूर्वकालीन वक्रोक्ति विचार के बारे में टिप्पणी लिखिए।
3. वक्रोक्ति का भेद लिखकर महत्व बताइए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 5

औचित्य संप्रदाय और उसके सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- औचित्य संप्रदाय और उसके सिद्धांत के बारे में जानता है
- औचित्य का स्वरूप समझता है
- आचार्य क्षेमेन्द्र पूर्व औचित्य विचार जानता है
- औचित्य के भेदों से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

औचित्य सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र सिद्धांतों में सबसे नवीन सिद्धांत है। भारतीय काव्यशास्त्र के अन्य सभी सिद्धांतों के अस्तित्व में आने के पश्चात इस सिद्धांत का आविर्भाव हुआ। दूसरे शब्दों में इसे संस्कृत काव्यशास्त्र का अंतिम सिद्धांत भी कह सकते हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

औचित्य का स्वरूप, कान्ता विलोचनन्यस्तं मलीमसमिवांजन, औचित्य, छन्दौचित्य

Discussion / चर्चा

आचार्य क्षेमेंद्र ने औचित्य सिद्धांत का प्रवर्तन किया। यह सिद्धांत अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। आचार्य क्षेमेंद्र लिखते हैं- "औचित्य रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।"

अर्थात् रससिद्ध काव्य का प्राण औचित्य ही है। उन्होंने काव्य के सभी आवश्यक तत्वों को औचित्य के अंतर्गत ही समाहित कर दिया। उनके साथ-साथ अन्य सभी आचार्यों ने भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से औचित्य के महत्व को स्वीकार किया है। कारण यह है कि काव्य में विभिन्न अंगों-प्रत्यंगों में औचित्य होने पर ही सौंदर्य का सृजन हो सकता है तथा सहृदय रसानुभूति प्राप्त कर सकता है।

- रससिद्ध काव्य का प्राण औचित्य है

2.5.1 औचित्य का स्वरूप

औचित्य शब्द का अर्थ है- उचित का भाव कहा। "उचितस्य भावः औचित्यम्"। 'उचित' शब्द 'उच्' धातु तथा 'क्तिच्' प्रत्यय के योग से बना है। इसका धातुलभ्य अर्थ है- एकत्र किया हुआ अथवा बोला हुआ। इसका कोषगत अर्थ है- योग्य। आचार्य क्षेमेंद्र ने उचित शब्द का अर्थ 'अनुरूप' या 'जचना' माना है। जो वस्तु जिसके अनुकूल होती है उसे प्राचीन आचार्यों ने उचित कहा है। अतः उचित का भाव ही औचित्य है।

- उचित का भाव औचित्य है

2.5.1.1 आचार्य क्षेमेन्द्र पूर्व औचित्य विचार

आचार्य क्षेमेंद्र से पूर्व भरत, आनंदवर्धन, अभिनव गुप्त आदि आचार्यों ने काव्य रचना के संदर्भ में औचित्य के महत्व का प्रतिपादन किया। औचित्य की अवधारणा का समुचित विवेचन करने के कारण आचार्य क्षेमेंद्र को इसके प्रतिपादक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

भरत मुनि

▶ औचित्य बनाए रखने के लिए अनौचित्य से बचना है

आचार्य भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में कहीं पर भी औचित्य सिद्धांत की चर्चा नहीं की लेकिन व्यवहार में उन्होंने औचित्य पर बल अवश्य दिया। वे काव्य में औचित्य बनाए रखने के लिए अनौचित्य से बचने की प्रेरणा देते हैं। उनके अनुसार आयु के अनुसार वेश, वेश के अनुसार गति तथा गति के अनुसार पाठ्य और पाठ्य के अनुसार अभिनय होना चाहिए। उपरोक्त नियमों के अनुसार नाट्य नहीं हुआ तो उसमें दोष उत्पन्न हो जाता है। दोष उत्पन्न होने से रस सिद्धि में बाधा उत्पन्न होती है और परिणामस्वरूप काव्य या नाट्य रचना का प्रयास व्यर्थ चला जाता है।

भामह

▶ औचित्यपूर्ण विधान होने पर दोषपूर्ण उक्ति भी उसी प्रकार शोभाजनक हो जाती है

अलंकारवादी आचार्य भामह ने भी स्पष्ट कहा है कि जिन बातों को काव्य दोष कहा जाता है यदि काव्यादि में उनका औचित्यपूर्ण प्रयोग किया जाए तो वे दोष न बनकर गुण बनते हैं। वे कहते हैं कि विशेष सन्निवेश अर्थात् औचित्यपूर्ण विधान होने पर दोषपूर्ण उक्ति भी उसी प्रकार शोभाजनक हो जाती है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए कोई अन्य उदाहरण में वे कहते हैं कि सुंदर नारी के नेत्रों में काजल भी शोभित होता है- "कान्ता विलोचनन्यस्तं मलीमसमिवांजनम्"

दण्डी

▶ औचित्य के स्थान पर 'दोष-परिहार' शब्द का प्रयोग

आचार्य दंडी ने औचित्य के स्थान पर 'दोष-परिहार' शब्द का प्रयोग किया है। 'दोष-परिहार' का कारण कवि कौशल है। अनुचित संयोग से दोष उत्पन्न होते हैं। कवि कौशल के सन्निवेश से दोष भी अपना मार्ग छोड़कर गुणों का मार्ग ग्रहण कर लेते हैं।

रूद्रट

▶ 'औचित्य' शब्द का स्पष्ट प्रयोग रूद्रट ने किया

संस्कृत काव्यशास्त्र में रूद्रट पहले आचार्य हैं जिन्होंने यशोवर्मन के पश्चात 'औचित्य' शब्द का स्पष्ट प्रयोग किया। उन्होंने अपनी रचना 'काव्यालंकार' के प्रथम अध्याय में छन्दौचित्य, द्वितीय में रीति तथा वृत्ति औचित्य, तृतीय में अलंकारौचित्य, षष्ठ में वक्ता तथा विषय संबंधी औचित्य तथा एकादश अध्याय में जाति, वंश विय, विद्या, वित्त, देश-स्थान तथा पात्रादि के औचित्य के बारे में चर्चा की है। इससे क्षेमेन्द्र के औचित्य सिद्धांत को बल मिलता है।

आनंदवर्धन

▶ औचित्य को रसाभिव्यक्ति का आधार माना

यशोवर्मन तथा रूद्रट के पश्चात आनंदवर्धन ने भी 'औचित्य' शब्द का स्पष्ट उल्लेख किया। उन्होंने काव्य के सभी तत्वों अलंकार, रीति, वृत्ति तथा गुण आदि की उपयोगिता रसाभिव्यक्ति में सहायक होने में स्वीकार की। साथ ही औचित्य को रसाभिव्यक्ति का आधार माना। औचित्य का अनुसरण ही रस का परम रहस्य है।

2.5.2 औचित्य के भेद

औचित्य की स्पष्ट रूप से व्याख्या करने वाले आचार्यों में आनंद वर्धन ने औचित्य शब्द का प्रयोग करते हुए उसके छः प्रकार निश्चित किये- (1) रसौचित्य (2) अलंकारौचित्य (3) गुणौचित्य (4) संघटनौचित्य (5) प्रवन्धौचित्य (6) रीति-औचित्य। इनमें से प्रत्येक का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया गया है।

रसौचित्य- औचित्य से प्रदीप्त रस सभी सहृदयों के हृदय में व्याप्त होकर उनको ऐसे प्रसन्न करता है जैसे वसंत अशोक को अंकुरित करता है।

अलंकारौचित्य- प्रस्तुत अर्थ के अनुकूल विभिन्न अलंकारों का प्रयोग ही अलंकारौचित्य कहलाता है। अलंकारों के प्रयोग से काव्य में लावण्य तथा रस का पोषण होता है।

गुणौचित्य- क्षेमेंद्र का कहना है कि काव्य में गुणों का समावेश अर्थ पर दृष्टि रखकर करना चाहिए। इस दृष्टि से वीर उक्ति में ओज तथा विप्रलम्भ श्रृंगार में माधुर्य गुण का समावेश आवश्यक है।

संघटनौचित्य- पदों की सुव्यवस्थित रचना ही संघटना कहलाती है। यह संघटना गुणों पर आश्रित है तथा रसाभिव्यक्ति में सहायक है।

▶ आनंद वर्धन ने औचित्य शब्द का प्रयोग करते हुए उसके छ प्रकार निश्चित किये

प्रबंधौचित्य- यदि संपूर्ण प्रबंध का अर्थ अनुरूप हो तो वह सहृदयों के चित्त को आकर्षित करने वाला तथा चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ होता है। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' तथा केशवदास कृत 'रामचंद्रिका' प्रबंधौचित्य के सुंदर उदाहरण हैं।

2.5.3 औचित्य का महत्व

काव्य में औचित्य का विशेष महत्व है। औचित्य का निर्वाह काव्य को सुंदर बनाता है। औचित्य मूलतः विशेषण है और यह विशेष्य का नियामक है। इस प्रकार यह कार्य का कारक तत्व माना जाता है। अभिनवगुप्त ने स्पष्ट रूप से औचित्य का रस-ध्वनि औचित्य अर्थ दिया है और रस-ध्वनि के अभाव में औचित्य के महत्व को स्वीकार नहीं किया।

▶ औचित्य का निर्वाह काव्य को सुंदर बनाता है

औचित्य का क्षेत्र व्यापक है। काव्य जगत में कवि प्रतिभा नवीन उद्भावनाओं, विधाओं और शैलियों के नवीन प्रयोग करती रही है, उस समय औचित्य ही नए प्रयोगों का नियामक होता है।

▶ औचित्य का काव्य रचना में विशेष महत्व है

उपर्युक्त विवेचन से यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि औचित्य का काव्य रचना में विशेष महत्व है। यदि कोई कवि औचित्य का समुचित पालन नहीं करता तो उसकी काव्य-रचना पाठकों को रसानुभूति प्रदान नहीं कर सकेगी। डॉक्टर सत्यदेव चौधरी का मत है कि काव्य में गुण, अलंकार, रस आदि सभी 27 काव्य-तत्वों का प्रयोग औचित्यपूर्ण होना चाहिए।

इसमें सन्देह नहीं कि औचित्य से काव्य में मूल सौंदर्य की रक्षा होती है, उसके अभाव में सौंदर्य नहीं सत्ता-कुरूपता में परिणत हो सकता है। यह भी स्पष्ट है कि वह मूल सौंदर्य का स्थानापन्न नहीं बन सकता। औचित्य में अपने-आपमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह काव्य-सौंदर्य की सृष्टि कर सके। यह ठीक है कई बार औचित्य या स्वाभाविकता के कारण ही कोई उक्ति सुन्दर बन जाती है; किन्तु यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो वहाँ भी उसके सौंदर्य के मूल में औचित्य के साथ-साथ कोई अन्य तत्व भी मिश्रित होगा। उदाहरण के लिए सूरदास के

▶ औचित्य या स्वाभाविकता के कारण कोई उक्ति सुन्दर बन जाती है

बाल-वर्णन की प्रशंसा में कई बार उसकी स्वाभाविकता की चर्चा की जाती है। किन्तु साथ ही यह भी असंदिग्ध है कि भावनाशून्य होने पर एक स्वाभाविक वर्णन भी दंडी द्वारा कथित 'वार्ता' मात्र रह जायेगा, काव्य की संज्ञा उसे नहीं दी जा सकेगी।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

यही कहना ठीक है कि औचित्य वह तत्व है जो कविता-कामिनी के मुखचंद्र को निखारकर निष्कलंक, अम्लान एवं स्वच्छ तो बनाता है, किन्तु उसे ज्योत्स्ना का नया वैभव प्रदान करना उसके वश की बात नहीं है। प्रयोगवादी शब्दावली में कहें तो वह अधिक से अधिक 'लक्स की टिकिया' है, 'सौंदर्य की पुड़िया' उसे नहीं कह सकते।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. औचित्य का अर्थ लिखकर औचित्य का स्वरूप समझाइए।
2. आचार्य क्षेमेन्द्र पूर्व औचित्य के प्रतिपादक विद्वान कौन-कौन हैं।
3. औचित्य के महत्व पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

BLOCK-03

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास

Block Content

Unit 1: पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास

Unit 2: अरस्तु के काव्य सिद्धांत

Unit 3: लोंजाइनस का औदात्य विवेचने

Unit 4: क्रोचे का अभिव्यंजनावाद, सहजानुभूति

इकाई : 1

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- पाश्चात्य काव्यशास्त्र से परिचित होता है
- प्लेटो का आदर्शवाद समझता है
- प्लेटो के दार्शनिक एवं राजनीतिक विचार के बारे में जानता है
- प्लेटो का साहित्य संबंधी दृष्टिकोण समझता है

Background / पृष्ठभूमि

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास काफी समृद्ध है। 8वीं सदी ईसा पूर्व से ही काव्यशास्त्र संबंधी विवरण उपलब्ध होने लगते हैं। परंतु व्यवस्थित विचार विमर्श प्लेटो के आगमन के बाद ही प्रारंभ होता है। उसके बाद प्लेटो का शिष्य अरस्तू ने न केवल इस परंपरा को आगे बढाया बल्कि साहित्य को स्थापित करने का भी काम किया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

दि रिपब्लिक, दि स्टेट्समैन, दि लॉज, आइडियलिज्म, आदर्श-गण-राज्य, उपयोगितावादी दृष्टिकोण, काव्यानुभूति

Discussion / चर्चा

3.1.1 पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास

पाश्चात्य काव्य चिंतन की परंपरा का विकास 5वीं सदी ईसा पूर्व से माना जाता है। पाश्चात्य काव्य चिंतन की परंपरा में 5वीं सदी ईस्वी के पूर्व हेसियड, सोलन, पिंडार, नाटककार एरिस्तोफेनिस आदि की रचनाओं में साहित्यिक सिद्धांतों का उल्लेख मिलता है। एक व्यवस्थित शास्त्र के रूप में पाश्चात्य साहित्यालोचन की पहली झलक प्लेटो (427-347 ई. पू.) के 'इओन' नामक संवाद में मिलती है।

3.1.1.1 प्लेटो का आदर्शवाद

पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता का आदिस्रोत यूनान रहा है। यूनान के दार्शनिकों, विचारकों एवं काव्य-चिंतकों ने अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन ईसा से चार-पाँच शताब्दियों पूर्व किया था। यूनान के गौरवशाली चिंतकों एवं महान दार्शनिकों में सुकरात के शिष्य प्लेटो का नाम सर्वोपरि है। प्लेटो मूलतः दार्शनिक एवं आचार्य थे- उन्होंने ई. पू. 388 में अपनी जन्मभूमि एथेन्स में एक विद्यालय की भी स्थापना की थी तथा अपने अंतिम समय तक वहीं अध्यापन कार्य करते

रहे। प्लेटो का दृष्टिकोण सर्वत्र स्वतन्त्र एवं मौलिक दिखाई पड़ता है जिसका प्रमाण उनके द्वारा रचित विभिन्न दार्शनिक एवं राजनीतिक ग्रन्थों में मिलता है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में 'दि रिपब्लिक' (गणराज्य), 'दि स्टेट्समैन' (राजनेता), 'दि लॉज' (विधि) आदि उल्लेखनीय हैं। प्लेटो के साहित्यिक विचार उनके दार्शनिक एवं राजनीतिक सिद्धांतों से प्रभावित हैं। अतः उनकी साहित्य-संबंधी धाराओं के विवेचन से पूर्व उनके दार्शनिक एवं राजनीतिक विचारों को समझ लेना आवश्यक है।

▶ प्लेटो के साहित्यिक विचार उनके दार्शनिक एवं राजनीतिक सिद्धांतों से प्रभावित

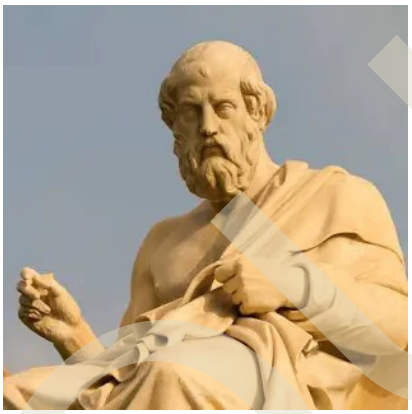

3.1.1.2 प्लेटो के दार्शनिक विचार

दर्शन का चरम लक्ष्य सत्य या अन्तिम सत्य की खोज करना होता है। अन्तिम सत्य के संबंध में दार्शनिकों के मुख्यतः दो वर्ग रहे हैं- एक, जो किसी सूक्ष्म सत्ता या परोक्ष शक्ति को- जिसे परमात्मा का भी नाम दिया जाता है- अंतिम सत्य या शाश्वत तत्व मानते हैं, जबकि दूसरे वर्ग में वे आते हैं, जो इस स्थूल एवं भौतिक जगत को ही सृष्टि का आधारभूत तत्व एवं सत्व मानते हैं। इन्हें क्रमशः आदर्शवादी एवं यथार्थवादी कहा जाता है। प्लेटो प्रथम वर्ग में आते हैं। वे मानते थे कि इस भौतिक जगत के पीछे किसी सूक्ष्म, शाश्वत एवं अलौकिक जगत का आधार है अथवा इस जगत किसी आध्यात्मिक लोक की प्रतिच्छाया है, अतः यह जगत और इसके पदार्थ मिथ्या हैं, जबकि उनका वास्तविक रूप विचार (Ideas) रूप में अध्यात्म-लोक में विद्यमान है। इस सृष्टि का निर्माण किसी अलौकिक शक्ति या परमात्मा के विचारों (Ideas) के अनुसार हुआ-अतः विचार ही मूल तत्व है जबकि वस्तु मिथ्या है।

▶ यह जगत किसी आध्यात्मिक लोक की प्रतिच्छाया है

प्लेटो के अनुसार इस संसार में जितनी वस्तुएँ हैं, वे सभी विचाररूप में अलौकिक जगत में विद्यमान हैं। सांसारिक पदार्थ अपूर्ण, परिवर्तनशील एवं नाशवान है, अतः वे मिथ्या हैं जबकि अलौकिक जगत में विद्यमान उनका विचार या प्रत्यय अपरिवर्तनीय एवं शाश्वत होने के कारण सत्य है। इस प्रकार वस्तु की अपेक्षा विचार या तत्व (Idea) को ही प्रमुखता देने के कारण ही प्लेटो के विचारों को तत्ववाद या आदर्शवाद (Idealism) कहा जाता है। अंग्रेजी का 'आइडियलिज्म' (आदर्शवाद) शब्द भी 'आइडिया' (विचार) से बना है जो इस तथ्य का सूचक है कि वह वाद पदार्थों की अपेक्षा उनके विचार को अधिक महत्व देता है।

▶ वस्तु की अपेक्षा विचार या तत्व को ही प्रमखता देने के कारण ही प्लेटो के विचारों को तत्ववाद या आदर्शवाद (Idealism) कहता है

3.1.1.3 राजनीतिक विचार

प्लेटो के समय यूनान की राजनीति अत्यंत अस्त-व्यस्त एवं शोचनीय प्रजातंत्रीय व्यवस्था थी। प्रजातंत्र में जब शक्ति कुछ अदूरदर्शी, स्वार्थी, विलासी धनलोलुपों के हाथ में चली जाती है तो वह मूर्खों का शासन सिद्ध होता है। इसीलिए प्लेटो एक ऐसी शासन-प्रणाली का

आविष्कार करने के लिए लालायित थे, जिसमें सत्य के पुजारियों को सर्वोपरि स्थान प्राप्त हो। वह तभी संभव है जबकि शासन की सत्ता किसी सत्यवेत्ता विद्वान एवं सदाचारी कर्मनिष्ठ व्यक्ति के हाथ में रहे। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसने एक ऐसे 'गणराज्य' की कल्पना की जिसका शासक कोई महान दार्शनिक आचार्य या महात्मा होगा।

▶ प्लेटो ने 'गणराज्य' की कल्पना की जिसका शासक कोई महान दार्शनिक आचार्य या महात्मा होगा

अपने ग्रन्थ 'दि रिपब्लिक' में प्लेटो ने विस्तार से एक ऐसी योजना-पद्धति का प्रतिपादन किया है जिससे इस प्रकार के शासन का चयन हो सके। उसके विचारानुसार विद्यालयों में ही इस प्रकार के चयन की प्रक्रिया का सूत्रपात हो जाना चाहिए। सात से लेकर बीस वर्ष तक की आयु के विद्यार्थियों में से जो सर्वोच्च स्तर के सिद्ध हों, उन्हें सैनिक के रूप में चुना जाना चाहिए। इन सैनिकों को भी विशेष शिक्षा दी जानी चाहिए और उनमें से जो उच्च स्तर के सिद्ध हों, उन्हें शासक वर्ग में ले लिया जाना चाहिए। इस शासक वर्ग को भी विशेष शिक्षा-दीक्षा देकर उसमें से भी जो सर्वोच्च स्तर का सिद्ध हो, उसे राजा या प्रमुख शासक चुना जाना चाहिए। इस प्रकार प्लेटो के स्वप्नों का शासक न केवल दर्शन, विज्ञान एवं शासन पद्धति में पारंगत होगा, अपितु वह अपने वैयक्तिक एवं चारित्रिक गुणों की दृष्टि से भी संपन्न होगा। संभव है, सत्ता-प्राप्ति के अनंतर यह शासक भी स्वार्थी एवं लोभी होकर प्रजा के साथ अन्याय करने लगे-इस सम्भावना को समाप्त करने के लिए प्लेटो ने उसके लिए व्यक्तिगत धन-संपत्ति एवं परिवार का निषेध किया। प्लेटो का आदर्श शासक अपने उचित उपयोग के लिए राज्य की संपत्ति को काम में ले सकेगा तथा सीमित एवं अस्थायी रूप से किसी स्त्री से यौन संपर्क भी स्थापित कर सकेगा, किन्तु वह विवाह करके अपना अलग घर कभी नहीं बसाएगा।

▶ अपने ग्रन्थ 'दि रिपब्लिक' में प्लेटो ने विस्तार से एक ऐसी योजना-पद्धति का प्रतिपादन किया है जिससे इस प्रकार के शासन का चयन हो सके

प्लेटो का लक्ष्य एक ऐसे राज्य की स्थापना करने का था जिसमें सत्य, न्याय, धर्म और सदाचार की पूर्ण प्रतिष्ठा हो सके। इसके लिए एक ओर शासक में इन सबकी प्रतिष्ठा आवश्यक है, तो दूसरी ओर राज्य की सारी व्यवस्था एवं उसका वातावरण भी उसके अनुकूल होना चाहिए। इस व्यवस्था और वातावरण को अनुकूल या प्रतिकूल बनाने में कला और साहित्य क्या योग दे सकते हैं- इसी दृष्टिकोण से प्लेटो ने इन पर विचार किया है। वस्तुतः कला और साहित्य पर स्वतंत्र एवं निरपेक्ष दृष्टि से विचार करना उनका लक्ष्य नहीं था, अपितु आदर्श गणराज्य की सहयोगिनी शक्तियों के रूप में ही इनकी आलोचना की गयी है, इसीलिए वे इनके साथ पूरा न्याय नहीं कर सके।

▶ प्लेटो का लक्ष्य एक ऐसे राज्य की स्थापना करने का था जिसमें सत्य, न्याय, धर्म और सदाचार की पूर्ण प्रतिष्ठा हो सके

3.1.1.4 साहित्य संबंधी दृष्टिकोण

प्लेटो के लिए साहित्य का महत्व उसी सीमा तक था, जहाँ तक वह उसके आदर्श-गण-राज्य के नागरिकों में सत्य, न्याय और सदाचार की भावना की प्रतिष्ठा में सहायक सिद्ध होता है। कला और साहित्य से असीम आनंद प्राप्त होता है-इस तथ्य को प्लेटो अस्वीकार नहीं करते, किन्तु वे ऐसे आनंद को जो उपर्युक्त लक्ष्यों की पूर्ति में बाधक सिद्ध हो, कोई महत्व प्रदान नहीं करते। दूसरे शब्दों में, कला और साहित्य की कसौटी उनके लिए सौंदर्य या आनंद न होकर उपयोगिता थी। इतना ही नहीं, स्वयं सौंदर्य के संबंध में उनकी धारणा थी कि जो वस्तु उपयोगी है वही सुन्दर है। 'एक गोबर से भरी हुई टोकरी भी सुन्दर कही जा सकती है यदि वह अपना कोई उपयोग रखती हो, अन्यथा एक स्वर्णजटित चमचमाती हुई ढाल भी असुन्दर है यदि वह उपयोग की दृष्टि से महत्वशून्य हो।' संक्षेप में उन्होंने शुद्ध उपयोगितावादी दृष्टि कोण से ही साहित्य पर विचार किया। दुर्भाग्य से उस समय का यूनानी साहित्य कामोत्तेजक एवं भावोद्वेलनप्रधान था-अतः सामाजिक हित की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध नहीं होता था; फलतः

▶ प्लेटो ने शुद्ध उपयोगितावादी दृष्टि कोण से साहित्य पर विचार किया

प्लेटो ने साहित्य के विरुद्ध मोर्चा लगाते हुए उस पर अनेक आक्षेप आरोपित किये, जिन पर आगे क्रमशः विचार किया जायेगा।

पहला आक्षेपः मिथ्यात्व- प्लेटो ने अपने पूर्वोक्त दार्शनिक सिद्धांत के अनुसार काव्य या साहित्य को मिथ्या जगत की मिथ्या अनुकृति सिद्ध किया। उनके विचारानुसार साहित्यकार जिन वस्तुओं या व्यक्तियों अथवा क्रिया-कलापों का वर्णन करता है, वे पहले से ही भौतिक जगत में विद्यमान हैं- जिनकी अनुकृति वह अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। वह मिथ्या जगत की मिथ्या अनुकृति प्रस्तुत करता है और इस प्रकार वह सत्य से तिगुना दूर है या इसप्रकार कहिए कि वह तिगुने झूठ का आविष्कार है अतः वह प्रशंसनीय नहीं दंडनीय है।

▶ साहित्यकार मिथ्या जगत की मिथ्या अनुकृति प्रस्तुत करता है

दूसरा आक्षेपः अमौलिकता एवं अज्ञानता- कवि या चित्रकार वस्तुतः कृति नहीं, अनुकृति एवं प्रतिकृति मात्र प्रस्तुत करता है, अतः उस पर दूसरा आरोप अमौलिकता एवं अज्ञानता का आरोप लगाया। एक मोची के कार्य को देखकर जब दूसरा मोची अनुकृति द्वारा जूतों की जोड़ी बनाता है, तो हम उसे अमौलिक तो कह सकते हैं किन्तु अज्ञानी नहीं, क्योंकि वह जब तक जूता बनाने के सारे ज्ञान को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक अनुकृति प्रस्तुत नहीं कर सकता। पर चित्रकार या कवि पर यह बात लागू नहीं होती! चाहे उन्हें इस बात का भी पता न हो कि जूते में जो चमड़ा लगता है, वह कहाँ से आता है या उसमें गाय की खाल का उपयोग होता है या बकरी की खाल का- पर फिर भी वे उसका प्रतिबिम्ब प्रस्तुत कर सकते हैं! ऐसी स्थिति में कवि का ज्ञान मोची के ज्ञान से भी कम होता है। प्लेटो के शब्दों में- "एक चित्रकार मोची, बढ़ई या अन्य कारीगर की कला से सर्वथा अनभिज्ञ होते हुए भी उनके कार्यों को इस प्रकार चित्रित कर देगा कि उससे सरल प्रकृति के लोगों अथवा बच्चों के मन में उसके वास्तविक कारीगर होने का भ्रम उत्पन्न से जायेगा!" इस प्रकार कवि न केवल स्वयं अज्ञानी है, अपितु वह अज्ञान के प्रसार में भी योग देता है।

▶ कवि या चित्रकार वस्तुतः कृति नहीं, अनुकृति एवं प्रतिकृति मात्र प्रस्तुत करता है

तीसरा आक्षेपः अनुपयोगिता-कवि या साहित्यकार अनुकृति के बल पर जो रचना प्रस्तुत करता है, वह किसी भी दृष्टि से उपयोगी सिद्ध नहीं होती, अतः प्लेटो के विचार से कलात्मक रचनाएँ, समाज के लिए सर्वथा अनुपयोगी हैं। कवि द्वारा वर्णित विषय से न तो उसकी यथातथ्य जानकारी प्राप्त हो सकती है और न ही उससे हमारे ज्ञान से अभिवृद्धि होती है और उससे शिक्षा-उपदेश भी प्राप्त नहीं होता। इसलिए प्लेटो ने कवियों को चुनौती देते हुए कहा है कि वे सिद्ध करें कि कविता की समाज के लिए क्या उपयोगिता है।

▶ प्लेटो के विचार से कलात्मक रचनाएँ, समाज के लिए सर्वथा अनुपयोगी हैं

प्लेटो के विचार से कवि न केवल अनुपयोगी एवं महत्वशून्य है, अपितु वह समाज में दुर्बलता एवं अनाचार का पोषण करने का भी अपराध करता है। प्लेटो के विचार से किसी भी समाज और राज्य में सत्य, न्याय और सदाचार की प्रतिष्ठा तभी संभव है, जबकि उसके सभी व्यक्ति अपनी वासनाओं एवं भावनाओं पर पूरा नियंत्रण रखते हुए विवेक-बुद्धि एवं नीति-ज्ञान के अनुसार चलें। इसके विपरीत कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्तियों की वासनाओं एवं भावनाओं को उद्वेलित कर देता है- ऐसी स्थिति में उसकी भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं और बुद्धि का अंकुश ढीला पड़ जाता है। यह स्थिति व्यक्ति को न केवल दुर्बल एवं अशक्त बनाती है, अपितु उसे कुमार्ग की ओर भी अग्रसर करती है ।

▶ कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्तियों की वासनाओं एवं भावनाओं को उद्वेलित कर देता है

प्लेटो की उपलब्धियाँ- सामान्य रूप में प्लेटो के सभी आक्षेप निरर्थक एवं भ्रामक सिद्ध होते हैं, पर यह बात केवल सच्चे साहित्यकारों की सात्विक रचनाओं के आधार पर ही कही

जा सकती है। कई बार कवि और कलाकार भी युगीन प्रवृत्तियों में बहकर अपनी रचनाओं को वासनाओं, कुण्ठाओं एवं अनाचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं। वे कवि कर्म को जीवन की उदात्त एवं गंभीर साधना बनाने की अपेक्षा उसे कामुक लम्पटों एवं व्यभिचारियों की कला का रूप दे देते हैं- ऐसी स्थिति में कविता सचमुच अपने उच्च सिंहासन से लुढ़ककर बाजार की गंदी गलियों में कूड़े के ढेर पर आसीन हो जाती है। दुर्भाग्य से प्लेटो भी ऐसे ही वातावरण में जी रहा था। कविता की बुराई करते हुए भी उसकी प्रकृति एवं प्रक्रिया के बारे में प्लेटो ने जो संकेत दिये थे, वे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। एक तो उसने कविता को अनुकृति बताकर काव्य-मीमांसा के क्षेत्र में एक ऐसे सिद्धांत की प्रतिष्ठा की, जो परवर्ती युग में विकसित होकर काव्य-समीक्षा का आधार बना।

▶ कविता की बुराई करते हुए भी उसकी प्रकृति एवं प्रक्रिया के बारे में प्लेटो ने जो संकेत दिये थे, वे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं

दूसरे, उसने काव्यानुभूति का स्वरूप आनंददायक एवं उसका आधार भावोद्वेलन को स्वीकार करते हुए आस्वादान-प्रक्रिया के आधारभूत सूत्रों की स्थापना की। इस दृष्टि से प्लेटो की स्थापनाएँ भारतीय रस-सिद्धांत के बहुत निकट पड़ती है, क्योंकि दोनों ही काव्यानुभूति को भावोद्वेलन के द्वारा आनंदानुभूति की उपलब्धि मानते हैं। फिर भी अपने दृष्टिकोण की एकांगिता एवं अपने युग के काव्य की दूषित प्रवृत्तियों के प्रभाव के कारण वह कविता को निष्पक्ष एवं संतुलित दृष्टि से नहीं देख सका। प्लेटो मूलतः काव्य-मीमांसक नहीं थे, वे दार्शनिक एवं राजनीतिज्ञ थे, उनका सर्वोच्च लक्ष्य अपने सपनों के आदर्श गणराज्य की प्रतिष्ठा करना था।

▶ प्लेटो ने काव्यानुभूति का स्वरूप आनंददायक एवं उसका आधार भावोद्वेलन को स्वीकार किया

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

पाश्चात्य जगत में सर्वप्रथम सुव्यवस्थित धर्म को जन्म देने वाला प्लेटो ही है। प्लेटो ने अपने पूर्ववर्ती सभी दार्शनिकों के विचार का अध्ययन किया और सभी में से उत्तम विचारों का पर्याप्त संचय किया उनका मत था कि "कविता जगत की अनुकृति है, जगत स्वयं अनुकृति है; अतः कविता सत्य से दोगुनी दूर है। वह भावों को उद्वेलित कर व्यक्ति को कुमार्गगामी बनाती है। अतः कविता अनुपयोगी है एवं कवि का महत्व एक मोची से भी कम है।"

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का परिचय दीजिए।
2. प्लेटो का आदर्शवाद क्या है?
3. प्लेटो के राजनीतिक विचार पर टिप्पणी लिखिए।
4. प्लेटो के राजनीतिक विचार क्या है?
5. प्लेटो के साहित्य संबंधी दृष्टिकोण क्या है?
6. प्लेटो की उपलब्धियाँ क्या-क्या हैं?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भमिूका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

अरस्तु के काव्य सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- अरस्तु के काव्य सिद्धांत से परिचित होता है
- अनुकृति सिद्धांत समझता है
- त्रासदी का स्वरूप जानता है
- विरेचन सिद्धांत समझता है
- प्लेटो और अरस्तु की अनुकरण विषयक धारणा के बारे में जानकारी प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में यूनानी विद्वान अरस्तू (384 पू.) का स्थान इतना अधिक महत्वपूर्ण है। उन्हें पाश्चात्य विद्याओं का आदि आचार्य भी कह सकते हैं। वे प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के शिष्य और विश्व-विजेता सिकन्दर के गुरु थे। उन्होंने अपने जीवन में लगभग चार सौ ग्रन्थों की रचना की जिनमें तर्क-शास्त्र भौतिकशास्त्र, मनोविज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, राजनीति-शास्त्र, आचार-शास्त्र, काव्य-शास्त्र आदि अनेक विषयों की सार-गर्भित विवेचना मिलती है। उनके साहित्य-संबंधी विचार "काव्य- शास्त्र" (Poetics) एवं "भाषण-शास्त्र" (Rhetorics) में उपलब्ध होते हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

विरेचन सिद्धांत, अनुकृति-सिद्धांत, नैतिक आचरण, विचारों का निष्कासन, मीमेसिस, अभावात्मक और भावात्मक

Discussion / चर्चा

3.2.1 अरस्तु के काव्य सिद्धांत

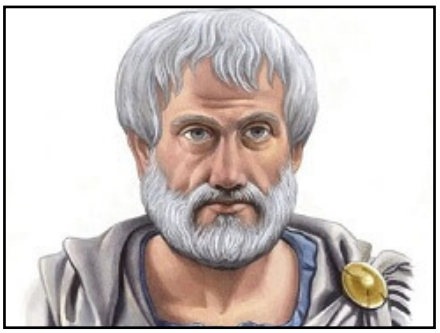

अरस्तू

अरस्तू ने काव्य के विषय में बहुत-सी बातें कहीं हैं, परंतु उनके प्रमुख काव्य-सिद्धांत हैं:

अनुकरण सिद्धांत तथा विरेचन सिद्धांत। इनके साथ ही उसने काव्य की उत्पत्ति ट्रेजेडी और महाकाव्य इत्यादि के विषय में भी कहीं-कहीं अपना मत व्यक्त किया है।

3.2.1.1 अनुकृति सिद्धांत

अरस्तू का सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत 'अनुकृति-सिद्धांत' है। वे अनुकृति को ही विभिन्न कलाओं-जिनमें काव्य-कला भी सम्मिलित है- का मूलाधार मानते हैं। यदि भारतीय शब्दावली का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि अरस्तू के विचार से काव्य की आत्मा 'अनुकृति' है। उन्होंने इस अनुकृति के माध्यम, विषय और विधान का विस्तार से विचार किया है। यद्यपि सभी कलाओं का मूल तत्व अनुकृति ही है, किन्तु उन सबके माध्यम आदि के पारस्परिक अंतर के कारण ही वे एक दूसरे से पृथक की जाती हैं, अतः काव्य के विशिष्ट अध्ययन के लिए उसके माध्यम आदि का ज्ञान अपेक्षित है।

▶ काव्य की आत्मा 'अनुकृति'

(1) काव्य में अनुकृति का माध्यम- जिस प्रकार संगीत में सामंजस्य और लय का, नृत्य में केवल लय का, उपयोग होता है, उसी प्रकार काव्य-कला में अनुकृति के लिए भाषा का उपयोग किया जाता है। यह भाषा गद्य या पद्य-दोनों में किसी भी रूप में प्रयुक्त हो सकती है। सामान्यतः लोग इस अनुकृति के तत्व को भूलकर केवल छन्द को ही कविता का प्रमुख लक्षण मान लेते हैं। किन्तु अरस्तू ने इस भ्रान्ति का निराकरण करते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा है- "it is the way with people to talk on 'poet' to the name of a metre and talk of elegiac-poets and elegiac thinking that they call them them poets not by reason of the imitative nature of their work but indiscriminately by reason of the metre of their writing. Even if a theory of medicine or physical philosophy be put forth in a metrical form it is usual to describe the writer in this way अर्थात् 'प्रायः लोग 'छन्द' के साथ 'कवि' शब्द इस तरह जोड़ देते हैं, और शोक-गीति-रचयिताओं की चर्चा इस प्रकार करते हैं मानो वे अनुकृति के नहीं, वरन छन्द के ही आधार पर, निर्विवेक रूप से कविपद के अधिकारी हो। यदि चिकित्सा-शास्त्र या भौतिक-दर्शन का कोई भी सिद्धांत छन्दोबद्ध रूपमें प्रस्तुत किया जाय तो उसके भी प्रस्तुत-कर्ता को प्रथानुसार कवि कहा जायेगा।' वस्तुतः अरस्तु के विचार से साहित्य को भौतिक-शास्त्र से पृथक करने वाला तत्व छन्द नहीं अपितु 'अनुकृति' है तथा उस अनुकृति के लिए छन्द ही माध्यम हो ऐसा आवश्यक नहीं भाषा का कोई भी रूप काव्यात्मक अनुकृति का माध्यम बन सकता है।

▶ काव्यकला में अनुकृति केलिए भाषा का उपयोग किया है

(2) अनुकरण के विषय- काव्य में क्रिया-कलापों की अनुकृति प्रस्तुत होती है और इन क्रिया-कलापों के प्रतिनिधि होते हैं-मनुष्य। इन मनुष्यों को भी दो वर्गों में बाँटा जा सकता है-अच्छे और बुरे। यह विभाजन मुख्यतः नैतिक आचरण पर आधारित है तथा नैतिक आचरण के विभेदक लक्षण हैं-सद्वृत्ति और दुर्वृत्ति। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि काव्य में या तो यथार्थ जीवन से श्रेष्ठतर व्यक्तियों के कार्य प्रस्तुत होते हैं या हीनतर या फिर यथावत रूप में। यह भेद चित्रकारी, नृत्य, संगीत आदि में भी मिलता है। काव्य के त्रासदी और कामदी-दो भेदों में से कामदी का लक्ष्य हीनतर रूप को प्रस्तुत करना होता है, जबकि त्रासदी का लक्ष्य है भव्यतर चित्रण करना। इस प्रकार संक्षेप में कह सकते हैं कि काव्य में मानवीय क्रिया-कलापों का अनुकरण होता है।

▶ काव्य में मानवीय क्रिया-कलापों का अनुकरण होता है

(3) अनुकृति की विधि- काव्य के विभिन्न रूपों में अनुकृत विषय एवं उसके माध्यम की समानता होते हुए भी उनमें परस्पर विधि या शैली का अंतर विद्यमान रहता है। अरस्तू ने

सामान्यतः तीन शैलियों का उल्लेख किया है - (1) जहाँ कवि कहीं अपने विषय का वर्णन करता है तथा कहीं अपने पात्रों के मुँह से कुछ कहलवा देता है। उदाहरण के लिए होमर का काव्य देखा जा सकता है। (2) प्रारंभ से लेकर अन्त तक कवि सर्वत्र एक जैसा ही रूप रखे। (3) कवि स्वयं दूर रहकर समस्त पात्रों को नाटकीय शैली में प्रस्तुत करे। अरस्तू के इस वर्गीकरण को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि पहली शैली प्रबन्धात्मक है, जिसमें कवि तथा विभिन्न पात्र प्रसंगानुसार कुछ कह सकते हैं। दूसरी आत्माभिव्यंजनात्मक है, जिसमें स्वयं कवि या कोई एक पात्र ही आदि से लेकर अन्त तक सारी विषय-वस्तु प्रस्तुत करता है। तीसरी नाट्य शैली है, जिसमें सभी पात्र वक्ता हो सकते हैं जबकि कवि को मौन हो जाना पड़ता है।

▶ अनुकृति की विधि का तीन शैली

3.2.1.2 काव्य में अनुकृति का महत्व

अरस्तू ने अनुकृति को इतना अधिक महत्व प्रदान किया है कि उनके विचार से काव्य की सृष्टि और उसके आस्वादन का मूल कारण अनुकृति ही है। वे काव्य के उद्भव पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि कविता सामान्यतः दो कारणों से प्रस्फुटित हुई प्रतीत होती है। इसमें से पहला कारण है मानव की सहज स्वाभाविक अनुकरण की प्रवृत्ति। "अनुकरण की प्रवृत्ति मनुष्य में शैशवावस्था से ही विद्यमान रहती है। मनुष्य और अन्य प्राणियों में एक अंतर यह है कि वह जीवधारियों में सबसे अधिक अनुकरणशील होता है तथा आरम्भ में वह सब कुछ अनुकरण के द्वारा ही सीखता है।" कविता की उत्पत्ति के दूसरे कारण के रूप में उसने सामंजस्य और लय की प्रवृत्ति का आख्यान किया है।

▶ कविता की उत्पत्ति के कारण सामंजस्य और लय की प्रवृत्ति है

काव्य-सृष्टि के साथ-साथ काव्यास्वादन का रहस्य भी मनुष्य की अनुकरण की प्रवृत्ति में ही निहित है। अरस्तू के विचार से:- "अनुकृत वस्तु से प्राप्त आनंद भी कम सार्वभौम नहीं है। अनुभव इसका प्रमाण है- जिन वस्तुओं के प्रत्यक्ष दर्शन से हमें क्लेश होता है, उन्हीं की यथावत प्रतिकृति को देखकर हम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।" यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि अनुकृति को देखकर हमें प्रसन्नता क्यों होती है? इनका उत्तर देते हुए अरस्तू ने बताया है कि ज्ञान के अर्जन से प्रत्येक व्यक्ति को प्रबल आनंद प्राप्त होता है। "अतः किसी प्रतिकृति को देखकर मनुष्य के आह्लादित होने का कारण यह है कि उससे वह कुछ ज्ञान प्राप्त करता है, वह वस्तुओं का अर्थ-ग्रहण करता हुआ सोचता है अरे, यह तो वह व्यक्ति है।"

▶ ज्ञान के अर्जन से व्यक्ति को प्रबल आनंद प्राप्त होता है

उपर्युक्त मान्यता के विपरीत कई बार हम यह भी देखते हैं कि जिस वस्तु को हमने पहले नहीं देखा, उसे भी देखकर हम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि कलाजन्य आनंद अनुकृति-जन्य आनंद ही है। अरस्तू भी इसे स्वीकार करता हुआ कहता है कि "यदि आपने मूल वस्तु को नहीं देखा तो आपका आनंद अनुकरण-जन्य न होगा - वह अंकन, रंग-योजना या किसी अन्य कारण पर आधृत होगा।"

▶ कलाजन्य आनंद अनुकृति-जन्य आनंद है

अनुकृति-सिद्धांत की व्याख्या एवं समीक्षा अरस्तू के अनुकृति-सिद्धांत की परवर्ती विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से व्याख्या करते हुए उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया। सबसे पूर्व तो अनेक विद्वानों ने अरस्तू के द्वारा प्रयुक्त 'मीमेसिस' (Mimesis) शब्द की ही मीमांसा की। यद्यपि यह शब्द अरस्तू का अपना आविष्कार नहीं था तथा यूनानी भाषा में यह बहुत पूर्व से प्रचलित था। काव्य के क्षेत्र में इसका प्रयोग अरस्तू से पूर्व प्लेटो भी कर चुके थे, किन्तु फिर भी आलोचकों का विचार है कि अरस्तू ने इसका प्रयोग प्लेटो से अधिक सूक्ष्म अर्थ में

किया था। बूचर महोदय के विचारानुसार 'अनुकृति' का अर्थ सादृश्य-विधान अथवा मूल का पुनरुत्पादन नहीं है। कलाकृति में मूल का पुनरुत्पादन नहीं होता, अपितु जैसा वह इंद्रियों को प्रतीत होता है वैसा उत्पादन होता है। प्रो. गिलबर्ट मरे ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए बताया कि 'अनुकरण' शब्द में 'करण' या 'सृजन' विद्यमान है, अतः अनुकरण का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है, अपने पूर्ण अर्थ में अनुकरण का आशय है ऐसे प्रभाव का उत्पादन, जो किसी स्थिति, अनुभूति अथवा व्यक्ति के शुद्ध, प्रकृत रूप से उत्पन्न होता है। स्कॉट जेम्स ने अनुकरण को कल्पनात्मक पुनर्निर्माण का पर्यायवाची माना है।

▶ अनुकरण कल्पनात्मक पुनर्निर्माण का पर्यायवाची शब्द है

अरस्तू के भारतीय व्याख्याता डॉ. नगेन्द्र ने भी उनके अनुकृति सिद्धांत की व्याख्या एवं समीक्षा करने का सफल प्रयास किया है। एक ओर उन्होंने 'मीमेसिस' (अनुकरण) शब्द की आवश्यकता को स्पष्ट रूप में स्वीकार करते हुए लिखा है- 'मीमेसिस' का अर्थ 'इमीटेशन' के अर्थ में इतना भिन्न नहीं है कि उसमें सर्जना का भी अंतर्भाव हो सके, अतएव यह आक्षेप असंगत नहीं हो सकता कि अरस्तू ने उचित शब्द का प्रयोग नहीं किया। जो अर्थ उन्होंने अनुकरण शब्द में भरना चाहा है, वह उसकी सामर्थ्य के बाहर है। तो दूसरी ओर उन्होंने उनके अर्थ-तत्व का अनुसंधान करते हुए कहा- "परन्तु शब्द को लेकर विवाद करना अधिक सार्थक नहीं होगा- विवेच्य विषय तो अर्थ है। यह सिद्ध है कि अनुकरण का अर्थ यथार्थ-मात्र नहीं है- वह पुनः सर्जन का पर्याय है और उसमें भाव-तत्व तथा कल्पना-तत्व का यथेष्ट अंतर्भाव है, उसमें सर्जना और सर्जना के आनंद की अस्वीकृति कदापि नहीं है।"

▶ अनुकरण में भाव तत्व तथा कल्पना तत्व का यथेष्ट अंतर्भाव है

3.2.1.3 त्रासदी का स्वरूप

अरस्तु ने 'काव्यशास्त्र' में काव्य की रचना, संरचना और प्रभाव-तीनो पक्षों पर विचार किया है, किन्तु जितना विचार उन्होंने त्रासदी की संरचना पर किया, उतना किसी अन्य विषय पर नहीं। पश्चिम में त्रासदी का सर्वप्रथम विवेचन यूनान में हुआ। क्योंकि वहीं उनका सर्वप्रथम सर्वांगीण विकास हुआ।

▶ काव्यशास्त्र की तीन पक्ष

अरस्तु से पूर्व प्लेटो ने भी त्रासदी पर अपने विचार प्रकट किये है, परन्तु अरस्तु ने ही सबसे पहले त्रासदी का गंभीर विवेचन किया। प्लेटो ने काव्य का वर्गीकरण करते हुए त्रासदी और कामदी दोनों के संबंध में अपना मंतव्य प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार त्रासदी महाकाव्य से निम्नकोटि का माना जाना चाहिए। परन्तु अरस्तु के विचार इस संबंध में कुछ भिन्न है। त्रासदी के मूल भाव करुणा और त्रास होते हैं। इन भावों को उदबुद्ध कर विरेचन पद्धति से मानव-मन का परिष्कार त्रासदी का मुख्य उद्देश्य हैं। त्रासदी की शैली भावपूर्ण और अलंकृत होती हैं।"

▶ त्रासदी के मूल भाव करुणा और त्रास

अरस्तु ने त्रासदी के अंगों का विवेचन संरचनात्मक-विश्लेषणात्मक पद्धति से किया है। उन्होंने त्रासदी के छः अनिवार्य अंग स्वीकार किये है:-

1. कथानक(plot)
2. चित्रण(character)
3. पदावली(diction)
4. विचार(thought)
5. दृश्य-विधान(visual principles)
6. गीत(song)

▶ त्रासदी के छः अनिवार्य अंग

इनमें से कथानक, चरित्र और विचार अनुकरण के विषय है, दृश्य-विधान अनुकरण की

पद्धति है और पदावली और गीत अनुकरण के माध्यम है।

3.2.1.4 विरेचन सिद्धांत

अरस्तू का कला संबंधी दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत-विरेचन सिद्धांत है। 'विरेचन' का अर्थ है- रेचक औषधि के द्वारा शारीरिक विकारों अर्थात् उदर के विकारों की शुद्धि। मूलतः इस शब्द का संबंध चिकित्सा-शास्त्र से है, रेचक औषधि के द्वारा शारीरिक विकारों की शुद्धि को विरेचन कहते हैं। अरस्तू से पूर्व भी यह शब्द यूनान में प्रचलित था, किन्तु साहित्य पर इसे लागू करने का श्रेय अरस्तू को ही है। प्लेटो ने कला और काव्य पर यह आक्षेप लगाया था कि इससे हमारी दूषित वासनाएँ और मनोवृत्तियाँ उत्तेजित एवं पुष्ट होती हैं-सम्भवतः इसी का खण्डन करने के लिए अरस्तू ने प्रतिपादित किया कि कला और साहित्य के द्वारा हमारे दूषित मनोविकारों का उचित रूप में विरेचन हो जाता है - अतः वे समाज के लिए हानिकारक नहीं हैं।

▶ विरेचन शब्द का संबंध चिकित्सा-शास्त्र से

संगीत के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए उसने लिखा- "संगीत सुनते समय हम कार्य और आवेग को अभिव्यक्त करने वाले रागों का भी आनंद ले सकते हैं, क्योंकि करुणा और त्रास अथवा आवेश कुछ व्यक्तियों में बड़े प्रबल होते हैं और न्यूनाधिक प्रभाव तो प्रायः सभी पर रहता है। करुणा और त्रास से आविष्ट व्यक्ति-प्रत्येक भावुक व्यक्ति इस प्रकार का अनुभव करता है और दूसरे भी अपनी-अपनी संवेदनशक्ति के अनुसार प्रायः सभी-इस विधि से एक प्रकार की शुद्धि का अनुभव करते हैं, उनकी आत्मा विशद और प्रसन्न हो जाती है। इस प्रकार विरेचन राग मानव-समाज को निर्दोष आनंद प्रदान करते हैं।' इसी प्रकार त्रासदी के प्रंसग में भी अरस्तू ने लिखा कि करुणा तथा त्रास के उद्रेक के द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि अरस्तू कलाओं का लक्ष्य मनोविकारों का विरेचन मानते हैं।

▶ विरेचन राग मानव-समाज को निर्दोष आनंद प्रदान करते हैं

3.2.1.5 अन्य विद्वानों के द्वारा 'विरेचन' शब्द की व्याख्या

अरस्तू-परवर्ती विद्वानों ने 'विरेचन' शब्द की व्याख्या करते हुए इसके विभिन्न अर्थ किये हैं, जिन्हें मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं- (1) अर्थ-परक अर्थ, (2) नीति-परक-अर्थ, (3) कला-परक-अर्थ। अर्थ-परक-अर्थ के अनुसार विरेचन का अर्थ है- बाह्य विकारों की उत्तेजना और उसके शमन के द्वारा आत्मा की शुद्धि और शांति। नीति- परक-अर्थ है-मनोविकारों की उत्तेजना द्वारा विभिन्न अन्तवृत्तियों का समन्वय या मन की शान्ति और परिष्कृति। विरेचन सिद्धांत की कला-परक व्याख्या के संबंध में विभिन्न विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के विचार से कलाजन्य आनंद भी विरेचन की परिधि में आता है तो कुछ इसे अस्वीकार भी करते हैं। उनके विचार से 'विरेचन' केवल अभावात्मक (विकारों को अभाव मात्र) क्रिया है, परितोष या आनंद का भाव उसी सीमा से बाहर है किन्तु प्रो. बूचर ने इस प्रकार के तर्कों का खंडन करते हुए बताया है कि विरेचन के दो पक्ष हैं- एक अभावात्मक और दूसरा भावात्मक। मनोवेगों के उत्तेजन और तत्पश्चात उनके शमन से उत्पन्न मनः शान्ति उसका अभावात्मक पक्ष है, इसके उपरान्त कलात्मक परितोष उसका भावात्मक पक्ष है। अरस्तू का अभिप्राय मनोविकारों के उद्रेक और उनके शमन से उत्पन्न मनःशान्ति तक ही सीमित है।

▶ विरेचन के दो पक्ष- अभावात्मक और भावात्मक

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'विरेचन' की कला-परक व्याख्या के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। हमारी दृष्टि में इस मतभेद का मूल कारण यह है कि विरेचन एक अपूर्ण एवं

▶ विरेचन एक अपूर्ण एवं सीमित सिद्धांत

सीमित सिद्धांत है, जो केवल दुखान्त रचनाओं पर ही लागू होता है, किन्तु अरस्तू के व्याख्याता इसे परिपूर्ण सिद्धांत के रूप में ग्रहण करके व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। काव्य और कलाओं द्वारा हमारी सभी प्रकार की भावनाओं की उद्दीप्ति और अभिव्यक्ति होती है जबकि विरेचन का संबंध केवल 'विकृत' या 'अशुद्ध' भावनाओं से ही है। अशुद्ध एवं कलुषित भावों के रेचन से मन के आनंद प्राप्त करने की बात मानी जा सकती है, किन्तु पवित्र एवं शुद्ध भावों के रेचन के संबंध में क्या कहा जाएगा। अवश्य ही इस प्रसंग में विरेचन की बात नहीं कही जा सकती। अस्तु, इस एकांगी सिद्धांत को सर्वांगीण रूप देना उचित प्रतीत नहीं होता।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

अरस्तू को पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आद्याचार्य कहा जाता है और इसमें संदेह नही कि उसने ही सर्वप्रथम काव्य एवं कला की सुनिश्चित और क्रमबद्ध व्याख्या की है। तथा काव्य कला को राजानीति एवं नैतिकता के बंधन से पृथक कर उसमें सौंदर्य की प्रतिष्ठा कर उसे गौरव प्रदान किया। काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में अरस्तू के सिद्धांत पूर्णतः स्वीकार्य न होते हुए भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जहाँ उनका अनुकृति-सिद्धांत कला की मूलभूत प्रकृति का परिचय देता है, वहाँ विरेचन से पाठक की आनंदानुभूति का रहस्य प्रकट होता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. अरस्तु के काव्य सिद्धांतों का परिचय दीजिए।
2. अनुकृति सिद्धांत का समर्थन कीजिए।
3. त्रासदी का स्वरूप समझाइए?
4. विरेचन सिद्धांत से तात्पर्य क्या है।
5. प्लेटो और अरस्तु की अनुकरण विषयक धारणा के बारे में टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जनै
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 3

लोंजाइनस का औदात्य विवेचने

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- औदात्य के लक्षण समझता है
- औदात्य का मूल आधार जानता है
- उदात के अंतरंग तथा बहिरंग तत्व का अंतर समझता है
- औदात्य के पाँच स्रोत से परिचित होता है
- औदात्य के बाधक तत्व जानता है

Background / पृष्ठभूमि

यूनान के साहित्य-चिंतकों की परंपरा में लोंजाइनस (Longinus) का गौरवपूर्ण स्थान है। उनकी एक छोटी-रचना उपलब्ध है- On the Sublime ('औदात्य' पर विचार) जो कि अनेक शताब्दियों तक अज्ञात एवं अप्रकाशित रही। आधुनिक काल के विद्वानों को इसके अस्तित्व का पता सर्वप्रथम 1554 ई. में चला तथा तदनंतर 1652 में इसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ जिससे इसका प्रचलन यूरोप के विभिन्न भागों में हुआ। स्वयं लोंजाइनस के जीवन-काल के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है, कुछ उन्हें पहली शताब्दी का कोई अप्रसिद्ध लेखक मानते हैं, तो दूसरे उन्हें तीसरी शताब्दी के सुप्रसिद्ध लोंजाइनस के रूप में स्वीकार करते हैं, जो कि महारानी जेनोबिया का मंत्री था तथा जिसने अपनी स्वामि-भक्ति की प्रेरणा से आत्मोत्सर्ग कर दिया था। हमारे विचार से लोंजाइनस का उदात्त चरित्र उन्हें 'औदात्य' ग्रन्थ का रचयिता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है, अतः हम भी उन्हें तीसरी शताब्दी के महान लोंजाइनस के रूप में स्वीकार करें तो अनुचित न होगा।

Keywords / मुख्य बिन्दु

औदात्य सिद्धांत, अवसरानुकूल, औदात्य स्रोत, शब्दाडंबर, भावावेग, रसात्मक काव्य

Discussion / चर्चा

3.3.1 लोंजाइनस का औदात्य विवेचन

लोंजाइनस ने उदात्त सिद्धांत के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि कोई भी कलाकृति या काव्यकृति बिना उदात्त तत्व के श्रेष्ठ रचना नहीं हो सकती। श्रेष्ठ वही है जिसमें रचयिता का गहन चिंतन और अनुभूतियाँ रहती हैं।

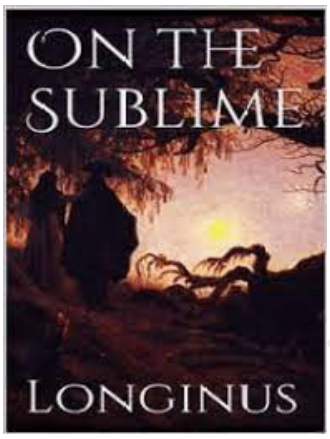

3.3.1.1 'औदात्य' स्वरूप

मीमांसा-'औदात्य' (Sublime) ग्रन्थ का मूल प्रतिपाद्य औदात्य सिद्धांत है। जिसकी विवेचना विस्तार से की गयी है। औदात्य के बारे में लोंजाइनस ने अनेक बातें कही हैं (1) औदात्य और उत्कृष्टता का नाम है। (2) अभिव्यक्ति की यह उच्चता (उदात्तता श्रोता के तर्क का समाधान नहीं करती, वरन उसे पूर्णतया अभिभूत कर लेती है। (3) किसी वस्तु पर विश्वास करें या नहीं, वह अपने वश में है, पर औदात्य अपनी प्रबल एवं दुर्निवार शक्ति के कारण प्रत्येक पाठक को अनायास ही बहा ले जाता है। (4) किसी भी सर्जना के शिल्प; उसकी सुस्पष्ट व्याख्या और तथ्यों के प्रस्तुतीकरण के गुणों का ज्ञान उसके एक या दो अंशों से नहीं, अपितु संपूर्ण रचना के शिल्प-विधान से धीरे-धीरे होता है, जबकि उदात्त विचार यदि अवसर के अनुकूल हो तो एकाएक विद्युत की भाँति चमककर समूची विषय-वस्तु को प्रकाशित कर देता है तथा वक्ता के समस्त वाग्वैभव को एक क्षण में ही प्रकट कर देता है।

▶ अभिव्यक्ति की उच्चता श्रोता को पूर्णतया अभिभूत कर लेती है

3.3.1.2 औदात्य के लक्षण

(क) औदात्य को अभिव्यक्ति की उच्चता से संबंधित किया गया है, इसका अर्थ है कि वह शैली का कोई विशेष गुण है।

(ख) दूसरे उद्धरण से ज्ञात होता है कि औदात्य तर्क का समाधान नहीं करता, अपितु वह श्रोता को अभिभूत कर लेता है, इसका तात्पर्य है कि वह बौद्धिक तत्व न होकर भावोत्पादक गुण है।

(ग) तीसरे कथन से भी यही स्पष्ट होता है कि औदात्य श्रोता को बलात् बहा ले जाता है अर्थात् वह अत्यंत प्रभावशाली होता है।

▶ औदात्य तर्क का समाधान नहीं करता

(घ) चौथे कथन के अनुसार औदात्य एक ऐसा विचार है, जो कि अवसरानुकूल होकर रचना में एकाएक चमत्कार की भाँति स्फुरित होता है।

वास्तव में एक स्थान पर औदात्य बोली को गुण कहा गया है, तो दूसरे स्थान पर उसे भावावेग एवं तीसरे पर उसे चमत्कारिक विचार बताया गया है। लोंजाइनस की अन्य स्थापनाओं से यह स्पष्ट होता है कि औदात्य एक भाव भी है, विचार भी और शैली भी। औदात्य को यहाँ इतने व्यापक रूप में ग्रहण किया गया है कि उनकी सत्ता रचना के वस्तु पक्ष से लेकर शैली पक्ष तक-सर्वत्र व्यापक दिखाई देती है। इतना ही नहीं, लोंजाइनस के विचार से

तो यह केवल कला का ही नहीं कलाकार का भी गुण है जब कलाकार के व्यक्तित्व में औदात्य होता है तो वह उदात्त विषय, उदात्त भाव एवं उदात्त विचारों को अपनाता है, परिणामस्वरूप उसकी शैली में भी औदात्य का संचार हो जाता है तथा अन्त में यही औदात्य अपने सुसमन्वित रूप में प्रकट होकर श्रोता या पाठक की आत्मा को झंकृत कर देता है जिसे हम 'चमत्कार' या 'आनंद' कहते हैं। इस धारणा का यही स्पष्टीकरण परवर्ती विवेचन से होता है।

▶ औदात्य एक भाव, विचार और शैली है

3.3.1.3 औदात्य का मूल आधार

लोंजाइनस के विचार से औदात्य न तो सर्वथा प्रतिभा-सापेक्ष्य है और न ही पूर्णतः अभ्यास-सापेक्ष्य है। वे औदात्य की मूल प्रेरक शक्ति प्रतिभा को मानते हुए भी यह स्वीकार करते हैं कि नियमों के ज्ञान एवं अभ्यास के द्वारा प्रातिभा ज्ञान का नियमन अपेक्षित है। जिस प्रकार मूल भावों को यदि सर्वथा स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो वे व्यक्ति को भटकाकर सर्वनाश की ओर ले जा सकते हैं, अतः उन पर बुद्धि का नियंत्रण अपेक्षित है। उसी प्रकार औदात्य के लिए भी प्रतिभा के साथ शिक्षा का समन्वय अपेक्षित है। पर इसका यह भी तात्पर्य नहीं कि अलंकारों या शब्दाडंबर के ज्ञान से औदात्य की उपलब्धि हो सकती है। वस्तुतः औदात्य का आधार व्यक्ति का कोई एक पक्ष, एक गुण या एक प्रवृत्ति नहीं है, अपितु उसके पीछे संपूर्ण व्यक्तित्व की झलक होती है।

▶ नियमों के ज्ञान एवं अभ्यास के द्वारा प्रातिभा ज्ञान का नियमन अपेक्षित है

प्रतिभाशाली व्यक्ति चारित्रिक दृष्टि से हलका क्षुद्र हो सकता है, उसकी वासनाएँ अपरिष्कृत एवं प्रवृत्तियाँ क्षुद्र भी हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में उनसे औदात्य की आशा नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार एक सुपठित विद्वान महान शास्त्रों का ज्ञाता होते हुए भी स्वार्थी, अहंवादी एवं दंभी हो सकता है, अतः उससे भी औदात्य सर्जना संभव नहीं। वस्तुतः औदात्य का स्रष्टा तो, उदात्त व्यक्तित्व ही हो सकता है। एक महान प्रतिभाशाली, उच्च विद्वान एवं यशस्वी चरित्रवान व्यक्ति ही उदात्त का उद्घोषक हो सकता है। लोंजाइनस के शब्दों में - "Sublimity is, so to say, the image of greatness of soul... true eloquence can be found only in those whose spirit generous and aspiring. For those whose whole lives are wasted in paltry and liberal thoughts and habits cannot possibly produce any work worthy of the lasting reverence of mankind. It is only natural that their words be full of sublimity whose thoughts are full of majesty." अर्थात् 'औदात्य आत्मा की महानता का प्रतिबिंब है। सच्चा औदात्य केवल उन्हीं में प्राप्य है जिनकी चेतना उदात्त एवं विकासोन्मुख है। जिनका सारा जीवन तुच्छ एवं संकीर्ण विचारों के अनुसरण में व्यतीत होता है, वे संभवतः कभी भी मानवता के लिए कोई स्थायी महत्व की रचना प्रस्तुत करने में सफल नहीं होते। सर्वथा स्वाभाविक है कि जिनके मस्तिष्क उदात्त धारणाओं से परिपूर्ण हैं, उन्हीं की वाणी से उदात्त शब्द झंकृत हो सकते हैं।'

▶ औदात्य आत्मा की महानता का प्रतिबिंब है

इस प्रकार औदात्य का संबंध केवल प्रतिभा, केवल अध्ययन और केवल आत्मा की महानता से नहीं, अपितु व्यक्ति के समूचे व्यक्तित्व से है। लोंजाइनस की यह धारणा उन्हें साहित्य-चिंतन की परंपरा में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी प्रमाणित करती है। इससे पूर्व कदाचित किसी भी अन्य आलोचक ने साहित्य का उसके रचयिता के व्यक्तित्व से इतना गहरा संबंध स्थापित नहीं किया था जितना कि यहाँ किया गया है। इस दृष्टि से उन्हें साहित्य में व्यक्तिवादी दृष्टि का मूल प्रवर्तक कहा जा सकता है।

▶ औदात्य का संबंध व्यक्ति के समूचे व्यक्तित्व से है

3.3.1.4 औदात्य के पाँच स्रोत

▶ औदात्य के पाँच स्रोतों के द्वारा किसी भी कृति में औदात्य का संचार होता है

यद्यपि औदात्य का मूलाधार साहित्यकार के व्यक्तित्व की ही महानता में निहित है, फिर भी स्पष्टता के लिए वस्तुगत दृष्टि से औदात्य के पाँच ऐसे स्रोतों की भी स्थापना की गई है जिनके द्वारा किसी भी कृति में औदात्य का संचार होता है। वे पाँच स्रोत क्रमशः ये हैं- उदात्त विचार,भावों का उदात्त रूप में चित्रण, अलंकार नियोजन, उत्कृष्ट भाषा, गरिमामय रचना-विधान।

इसमें से प्रथम दो जन्मजात हैं और उनका संबंध काव्य के अंतरंग पक्ष से है। शेष तीन कलागत है अतः वे बहिरंग पक्ष के अंतर्गत आते हैं। लोंजाइनस ने उदात्त को स्पष्ट करने के लिए उन तत्वों का भी उल्लेख किया है जो उदात्त के विरोधी हैं उसने उदात्त के स्वरूप को तीन पक्षों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

▶ औदात्य के तीन पक्ष

क- अंतरंग तत्व

ख- बहिरंग तत्व

ग- विरोधी तत्व।

क- अंतरंग तत्व

▶ व्यक्ति में औदात्य नैसर्गिक होता है

(1) उदात्त विचार- काव्यगत औदात्य के स्रोतों के अंतर्गत सर्वप्रथम उदात्त विचार (grandeur of thought) को लिया गया है। यहाँ यही उदात्त व्यक्तित्व या महान आत्माओं का प्रतिबिंब होता है, अतः इसे सर्वोच्च स्थान दिया गया है। व्यक्ति में औदात्य नैसर्गिक ही होता है, पर फिर भी शिक्षा-दीक्षा एवं संस्कारों से उसका सम्यक विकास या पोषण संभव है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उदात्त विचार महान व्यक्तियों की वाणी से स्वतः ध्वनित होते हैं, अतः इसके लिए किसी विशेष बाह्य प्रयास की अपेक्षा नहीं होती। जिस लेखक या वक्ता का निजी व्यक्तित्व उदात्त होगा, वह स्वतः ही उदात्त विषयों, महान कार्यों एवं महापुरुषों के चित्रण में रुचि लेता हुआ उनका चित्रण उदात्त रूपों में कर सकेगा। महापुरुषों एवं महान क्रिया-कलापों के सम्यक चित्रण के लिए उनके साथ तादात्म्य स्थापित करना आवश्यक है तथा यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह तादात्म्य केवल उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा संभव है, जो स्वयं उदात्त व्यक्तित्व के धनी हों। इसका उदाहरण 'इलियट' के रचयिता होमर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से दिया जा सकता है। होमर की महान धारणाएँ ही उनकी रचनाओं में उस महानता का संचार कर पायी हैं, जिसे दूसरे शब्द में 'औदात्य' कहा गया है।

▶ लोंजाइनस ने भावावेग को औदात्य का सहायक माना

(2) भावों का उदात्त रूप में चित्रण- काव्यगत औदात्य का दूसरा स्रोत उदात्त भावों का चित्रण है। लोंजाइनस से पूर्व कतिपय लेखकों ने या तो भाव और औदात्य की पृथकता को स्वीकार नहीं किया या फिर उन्होंने भावावेग को औदात्य में बाधक माना है। पर लोंजाइनस ने इस मत का तीव्र रूप में खंडन करते हुए भावावेग को औदात्य का सहायक माना है। "मेरे विचार से जो आवेग उन्माद उत्साह एवं उद्दामता से फूट पड़ता है और एक प्रकार से वक्ता के शब्दों को विक्षेप से परिपूर्ण कर देता है, उसके यथास्थान व्यक्त होने से स्वर में जैसा औदात्य आता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।" (ग्रीक साहित्य- शास्त्र, पृ. 161)

भावावेग की अभिव्यक्ति के विभिन्न साधनों के अंतर्गत लोंजाइनस ने सर्वाधिक महत्व परिस्थितियों (भारतीय शब्दावली में आलंबन एवं उद्दीपन के संयोग) को दिया है। उपयुक्त

▶ भावावेग की सर्वाधिक महत्व परिस्थितियों को दिया

परिस्थितियों का चयन एवं उनका सम्यक रूप में संघटन ही भावावेग का जनक सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त भावों के चित्रण में विस्तारण एवं बिंब-विधान से भी सहायता ली जा सकती है।

ख- बहिरंग तत्व

(1) अलंकार नियोजन- औदात्य का तीसरा स्रोत अलंकारों का नियोजन है। अलंकारों के संबंध में लोंजाइनस का विचार है कि उनके सम्यक प्रयोग से औदात्य की सिद्धि में पर्याप्त सहायता मिलती है। इस प्रसंग में उन्होंने अलंकारों के विभिन्न भेदों का भी निरूपण किया है, जिनमें से प्रमुख ये हैं- 1. शपथोक्ति 2. प्रश्नालंकार 3. विपर्यय 4. व्यतिक्रम 5. पुनरावृत्ति 6. प्रत्यक्षीकरण 7. संचयन 8. सार 9. रूपपरिवर्तन 10. पर्यायोक्ति 11. रूपक 12. उपमा आदि।

▶ अलंकार भावावेग की प्रेरणा से सहज स्वाभाविक रूप में प्रयोग

लोंजाइनस के मतानुसार अलंकारों का प्रयोग इस ढंग से होना चाहिए कि श्रोता या पाठक को उनके प्रयोग का पता न चले। दूसरे शब्दों में, अलंकार भावावेग की प्रेरणा से सहज स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त होने चाहिए, उसी स्थिति में वे प्रभावशली एवं औदात्य के उत्पादक सिद्ध होते हैं।

(2) उत्कृष्ट भाषा- औदात्य का चतुर्थ स्रोत उत्कृष्ट भाषा है। यह तथ्य है कि उपयुक्त एवं प्रभावोत्पादक शब्दावली श्रोता को आकर्षित करती हुई उसे भावाभिभूत कर लेती है। ऐसी शब्दावली, जिसमें भव्यता, सौंदर्य, मार्दव, गरिमा, ओज, शक्ति आदि श्रेष्ठ गुणों की अभिव्यक्ति हो, प्रत्येक वक्ता या लेखक के लिए स्पृहणीय है। 'सुन्दर शब्द ही वास्तव में विचारों को विशेष प्रकार का आलोक करते हैं, किन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि गरिमामयी भाषा ही प्रत्येक अवसर के अनुकूल है, क्योंकि छोटी-मोटी बातों को भारी-भरकम संज्ञा देना किसी छोटे से बालक के मुँह पर पूरे आकारवाला मुखौटा लगा देने के समान है।'

▶ सुन्दर शब्द ही वास्तव में विचारों को विशेष प्रकार का आलोक करते हैं

▶ भाषा के विभिन्न गुणों की उपयोगिता औदात्य की सृष्टि में है

उत्कृष्ट भाषा की विभिन्न विशेषताओं के अंतर्गत सुन्दर शब्दावली के अतिरिक्त ओज, प्रवाहपूर्णता, रूपकों का सीमित प्रयोग, उपमाओं एवं अत्युक्तियों का उचित प्रयोग आदि को स्थान दिया गया है। वस्तुतः भाषा के विभिन्न गुणों की उपयोगिता औदात्य की सृष्टि में है-यदि उसके ये गुण इस लक्ष्य की पूर्ति करते हैं तो स्वीकार्य है, अन्यथा नहीं।

(3) गरिमामय रचना-विधान- औदात्य का पाँचवाँ स्रोत गरिमामय रचना-विधान है। इसके अंतर्गत सर्वप्रथम सामंजस्य (Harmony) को स्थान दिया गया है। सामंजस्य का एक प्रकार शब्दों को विशेष क्रम में व्यवस्थित करता है। सामंजस्य में एक ऐसी शक्ति होती है जिससे कि वह न केवल श्रोता को प्रसन्नता प्रदान करता है, अपितु एक सीमा तक वह उसे द्रवित करके बहा भी ले जाता है। बाँसुरी की मधुर तान की भाँति रचना का सामंजस्य भी हमारे मन से विभिन्न भावों को उद्वेलित करता हुआ औदात्य की अनुभूति प्रदान करता है। विभिन्न छन्दों का आविष्कार सामंजस्य की स्थापना के लिए ही हुआ है।

▶ औदात्य का पाँचवाँ स्रोत

▶ औदात्य का सफलता एवं महत्ता साध्य की उपलब्धि तक है

इस प्रकार किसी भी रचना में औदात्य की सृष्टि उदात्त विचार, उदात्त भावावेग, सम्यक अलंकार-नियोजन, उत्कृष्ट भाषा एवं रचनागत सामंजस्य के द्वारा ही होती है। पराए सभी तो साधन मात्र हैं - इनका साध्य तो केवल औदात्य ही है, अतः इनकी सफलता एवं महत्ता उसी सीमा तक है, जहाँ तक वे साध्य की उपलब्धि में सफल सिद्ध होते हैं।

(ग) विरोधी तत्व /औदात्य के बाधक तत्व-

औदात्य के साधक तत्वों की भाँति उसके बाधक तत्व भी हैं, जिन्हें 'दोष' कहा जा सकता है। इनके अंतर्गत मुख्यतः भाषा की अव्यवस्था, प्रवाह-शून्यता, विषय से अधिक लय की प्रमुखता, उक्ति की अत्यधिक संक्षिप्तता, अस्पष्टता, आडंबरपूर्ण शैली, अनुचित विचार, अभिव्यक्ति की क्षुद्रता, ग्राम्य पदों का प्रयोग, कर्णकटु भाषा, विषयानुरूप शब्दावली का अभाव आदि दोषों को लिया गया है। इन दोषों से रचना का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

▶ औदात्य के बाधक तत्व को 'दोष' कहते हैं

लोंजाइनसः पुनर्मूल्यांकन- भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए लोंजाइनस के विचारों का पुनर्मूल्यांकन किया जाए तो हमारे विचार में उसकी निम्नांकित उपलब्धियाँ एवं सीमाएँ स्वीकार की जा सकती हैं।

3.3.1.5 उपलब्धियाँ

ग्रीक साहित्य चिंतन-परंपरा में लोंजाइनस पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने काव्य-वस्तु एवं काव्य-गरिमा का संबंध रचयिता के व्यक्तित्व से स्थापित करते हुए उसे महत्व प्रदान किया। उनसे पूर्व अरस्तू ने अनुकृति सिद्धांत द्वारा प्रकृति को ही काव्य का आधार स्रोत मानते हुए कवि के निजी व्यक्तित्व को सर्वथा उपेक्षित एवं तिरोहित कर दिया था। अनुकृति सिद्धांत के अनुसार कला प्रकृति की अनुकृति है, इसका तात्पर्य है कि कला का सौंदर्य प्रकृति के सौंदर्य की ही अनुकृति मात्र है, ऐसी स्थिति में कलाकार का क्या योगदान है? केवल अनुकृति प्रस्तुत कर देना तो कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। लोंजाइनस ने अनुकृति सिद्धांत की सर्वथा उपेक्षा करते हुए कवि के व्यक्तित्व की विशिष्टता एवं रचना की मौलिकता का प्रतिपादन किया, जो उसकी नूतन दृष्टि का प्रमाण है। वस्तुतः जहाँ प्लेटो घोर आदर्शवादी था, अरस्तू वस्तुवादी या यथार्थवादी, वहाँ लोंजाइनस स्वच्छन्दतावादी (रोमांटिक) था। पाश्चात्य परंपरा में कवि व्यक्तित्व को महत्व प्रदान करने के कारण ही लोंजाइनस को पहला रोमांटिक आलोचक माना जाता है जो ठीक ही है।

▶ कला का सौंदर्य प्रकृति के सौंदर्य की ही अनुकृति मात्र

दूसरे, औदात्य सिद्धांत की प्रतिष्ठा भी सर्वप्रथम लोंजाइनस द्वारा हुई। आगे चलकर विभिन्न पाश्चात्य आलोचकों एवं कला-मीमांसकों ने कला के दो प्रमुख तत्वों के अंतर्गत सौंदर्य एवं औदात्य को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है तथा कान्ट, हीगल, कैरिट, सैंतायन प्रभृति सौंदर्य-शास्त्रियों ने इनकी विस्तार से मीमांसा की है। वस्तुतः आधुनिक कला-समीक्षा में अरस्तू के अनुकृति-सिद्धांत की अपेक्षा औदात्य को ही अधिक महत्व प्राप्त है।

▶ औदात्य सिद्धांत की प्रतिष्ठा सर्वप्रथम लोंजाइनस द्वारा हुई

तीसरे, लोंजाइनस का दृष्टिकोण जितना गंभीर है, उनका विवेचन-विश्लेषण भी उतना ही सूक्ष्म एवं व्यापक है। वे औदात्य को एक व्यापक रूप प्रदान करते हैं कि उसके अंतर्गत कवि का व्यक्तित्व विचार-तत्व, भाव-तत्व, शैली का अलंकरण, शब्दचयन, रचना के गुण-दोष आदि सभी प्रमुख तत्व समाविष्ट हो जाते हैं। वे रचना की सर्जन-प्रक्रिया से लेकर उसकी आस्वादन-प्रक्रिया तक की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए उसके सभी महत्वपूर्ण पक्षों की व्याख्या सर्वथा नूतन, मौलिक एवं प्रौढ़ रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि लोंजाइनस महान चिन्तक एवं व्याख्याता थे।

▶ लोंजाइनस का विवेचन-विश्लेषण सूक्ष्म एवं व्यापक

भारतीय दृष्टि से लोंजाइनस का भावावेगों को महत्व देते हुए अलंकार, गुण-दोष आदि की मीमांसा करना विशेष महत्वपूर्ण है। यद्यपि लोंजाइनस ने मूलतः औदात्य को लक्ष्य माना है,

▶ रीति विवेचन भी भारतीय अलंकार एवं रीति सिद्धांत के अनुकूल है

पर भावावेगों के उद्वेलन एवं तज्जन्य आनंद की बात भी उन्होंने स्थान-स्थान पर की है जो भारतीय रस-सिद्धांत के अनुकूल है। इसी प्रकार उनका रीति विवेचन भी भारतीय अलंकार एवं रीति सिद्धांत के अनुकूल है।

3.3.1.6 सीमाएँ

▶ औदात्य का मूल अर्थ है- उच्च विचार

जहाँ औदात्य की व्यापक रूप में प्रतिष्ठा करते हुए लोंजाइनस ने उसका संबंध विचार, भाव, शैली आदि सभी पक्षों से स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है, वहाँ उनकी यह सीमा भी है कि ऐसा करते समय उन्होंने औदात्य के मूल क्षेत्र को भुला दिया है। औदात्य का मूल अर्थ है- उच्च विचार या ऐसी भावनाएँ जो त्याग, आत्मबलिदान या परोपकार की प्रेरक हों। इस दृष्टि से औदात्य एक चारित्रिक या नैतिक तत्व है, उसका कला से सीधा संबंध नहीं है।

▶ कला और काव्य का मूल गुण सौंदर्य या आकर्षण है

वस्तुतः औदात्य केवल शांत रसात्मक काव्य का ही प्रमुख गुण है, अन्य प्रकार के काव्य में उसका होना आवश्यक नहीं है। औदात्य सौंदर्य की अभिवृद्धि करने में, उसे अधिक गंभीरता प्रदान करने में सहायक तो सिद्ध हो सकता है, पर वह उसका स्थानापन्न या जनक नहीं बन सकता। औदात्य की इस दुर्बलता को जानते हुए लोंजाइनस ने इसका संबंध भाव, अलंकार, गुण आदि से स्थापित कर दिया, पर यह संबंध अस्वाभाविक एवं असंगत है। लोंजाइनस महोदय ने औदात्य का विस्तार करते-करते उसके मूल रूप को ही बदल डाला- वह उनके निबंध में, 'सौंदर्य' का पर्यायवाची बन गया। कला और काव्य का मूल गुण तो सौंदर्य या आकर्षण ही है, पर यदि उसमें, साथ ही औदात्य भी हो तो वह कला से महान कला और काव्य से महान काव्य बन जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

प्लेटो और अरस्तू से भिन्न और उसके समकालीन साहित्य शास्त्र में लोंजाइनस का उदात्त सिद्धांत को स्थान दिया गया है। लोंजाइनस मूलतः भाषणशास्त्री था, उसके द्वारा रचित पेरिइप्सुस का एक तिहाई ही प्राप्त हुआ। जो अपने आप में विलक्षण ग्रन्थ है, यह साहित्य शास्त्र का सौभाग्य है कि यह ग्रन्थ अधूरा ही सही मिला तो। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में लोंजाइनस द्वारा प्रतिपादित उदात्त सिद्धांत को विशेष स्थान दिया गया है। शास्त्रवादी और स्वच्छन्दतावादी आलोचक दोनों लोंजाइनस को खुले मन से प्रथम आलोचक के रूप में स्वीकार करते हैं।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. औदात्य के लक्षण क्या-क्या हैं?
2. औदात्य का मूल आधार क्या-क्या हैं?
3. उदात्त के अंतरंग तथा बहिरंग तत्व समझाइए।
4. औदात्य के पाँच स्रोतों पर लेख लिखिए।
5. औदात्य के बाधक तत्व क्या-क्या हैं?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भमिूका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 4

क्रोचे का अभिव्यंजनावाद, सहजानुभूति

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- क्रोचे का अभिव्यंजनावाद और सहजानुभूति से परिचित होता है
- क्रोचे का आधारभूत दर्शन समझता है
- कला के बारे में क्रोचे का मत जानता है
- कला में विषय और शैली की अभिन्नता समझता है

Background / पृष्ठभूमि

अभिव्यंजना के प्रवर्तक क्रोचे (1866 - 1952 ई) एक कला-मीमांसक, गंभीर तत्ववेत्ता और दार्शनिक भी थे। उन्होंने इतिहास के स्वरूप, सौंदर्य-शास्त्र, मार्क्सवादी अर्थ-व्यवस्था, आत्म-दर्शन आदि अनेक विषयों पर नवीन दृष्टिकोण से विचार किया। सन् 1900 में उन्होंने एक गोष्ठी में एक लेख - "Fundamental thesis of an aesthetic as science of expression and general linguistics" पढ़ा था। यही लेख उनके अभिव्यंजनावादी विचारों का मूलाधार बना। आगे चलकर उन्होंने इस संबंध में कुछ लेख लिखे तथा एक लेख 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में भी दिया। इससे उनकी प्रसिद्धि हो गई। उनका कला-संबंधी सर्व-प्रमुख ग्रन्थ 'एस्थेटिक' (सौंदर्य-शास्त्र) के नाम से प्रकाशित हुआ, जो विश्व की अनेक भाषाओं में अनूदित हो चुका है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

सहजानुभूति, अभिव्यंजना, ज्ञानात्मक प्रवृत्ति, व्यावहारिक प्रवृत्ति और आध्यात्मिक प्रवृत्ति, प्रत्यक्ष-बोध, शैली की अभिन्नता

Discussion / चर्चा

3.1.4 क्रोचे का अभिव्यंजनावाद/ सहजानुभूति

- सहजानुभूति ही अभिव्यंजना है

क्रोचे के अनुसार "अंतःप्रज्ञा के क्षणों में आत्मा की सहजानुभूति ही अभिव्यंजना है। अभिव्यंजनावाद की मूल संकल्पना है कि कला का अनुभव बिजली की कौंध की तरह होता है, अतः यह शैली विश्लेषणात्मक और आभ्यंतरिक होती है। क्रोचे के विचार प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल से प्रभावित हैं, किन्तु उसने उनका अंधानुकरण नहीं किया। क्रोचे ने हीगल की मूल-पद्धति का तो समर्थन किया, किन्तु कला के संबंध में उसके प्रयोग को उसने त्रुटिपूर्ण बताया। उसके मत से धर्म को कला का विपक्षी या विरोधी मानना अनुचित है।

क्रोचे

3.4.1.1 क्रोचे का आधारभूत दर्शन

हीगल ने आत्मा की भी त्रयात्मक स्थिति निर्धारित करते हुए उसकी तीन प्रवृत्तियाँ मानी थीं- (1) ज्ञानात्मक प्रवृत्ति (पक्ष) (2) व्यावहारिक प्रवृत्ति (विपक्ष) और (3) आध्यात्मिक प्रवृत्ति (समन्वय)। क्रोचे ने इसके स्थान पर केवल दो ही मूलभूत प्रवृत्तियाँ मानी - ज्ञानात्मक और व्यावहारिक। इनमें भी प्रत्येक के उन्होंने दो-दो भेद किये - ज्ञानात्मक के दो भेद (1) सहजानुभूति और (2) विचारात्मक क्रिया। व्यावहारिक प्रवृत्ति के दो भेद - (1) आर्थिक या निजी योग-क्षेम से संबद्ध और (2) नैतिक। इस प्रकार क्रोचे के मत से सभी प्रवृत्तियों को उपर्युक्त चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। कला और काव्य का संबंध इनमें से प्रथम प्रवृत्ति-सहजानुभूति से है।

▶ क्रोचे ने आत्मा की दो मूलभूत प्रवृत्तियाँ मानी

3.4.1.1.1 सहजानुभूति

सहज का शाब्दिक अर्थ है - 'एक साथ उत्पन्न' या 'बिना परिश्रम के प्राकृतिक रूप से उत्पन्न' है। सहजानुभूति और बौद्धिक ज्ञान की पृथकता का प्रतिपादन करते हुए वह लिखते हैं- "पहली बात जो मस्तिष्क में अच्छी तरह बिठा लेनी चाहिए, वह यह है कि सहजानुभूत ज्ञान को किसी स्वामी की आवश्यकता नहीं होती। उसे किसी का सहारा नहीं चाहिए, उसके लिये यह आवश्यक नहीं कि वह दूसरे की आँखें उधार ले, कारण उसकी आँखें स्वयं काफी तेज हैं।" क्रोचे इस बात को स्वीकार करता है कि कई बार सहजानुभूति में भी बौद्धिक ज्ञान समन्वित हो जाता है, या बौद्धिक ज्ञान के मूल में सहजानुभूति हो सकती है। सहजानुभूति और प्रत्यक्ष-बोध के अंतर को स्पष्ट करते हुए क्रोचे ने बताया है कि सहजानुभूति में यथार्थ और अयथार्थ का भेद नहीं होता जबकि प्रत्यक्ष-बोध में ऐसा होता है। इसी प्रकार सहजानुभूति ऐन्द्रिक संवेदनों से भी भिन्न है। सहजानुभूति साहचर्य या स्मृति व संस्कारों से भी भिन्न है। इस प्रकार सहजानुभूति को एक अच्छी पहेली बनाने के बाद क्रोचे ने अपने पाठकों पर दया करते हुए अंत में रहस्योद्घाटन किया है कि सहजानुभूति अभिव्यंजना है।

▶ सहजानुभूति में यथार्थ और अयथार्थ का भेद नहीं होता जबकि प्रत्यक्ष-बोध में ऐसा होता है

3.4.1.1.2 सहजानुभूति और कला

क्रोचे के मत में सहजानुभूति अभिव्यंजना होती है-यहाँ इस धारणा पर प्रकाश डाला जाएगा कि सहजानुभूति कला होती है। क्रोचे के विचार से प्रत्येक सहजानुभूति अभिव्यंजना है, और प्रत्येक अभिव्यंजना कला है, अतः यदि प्रत्येक सहजानुभूति को कला कह दिया जाए तो अनुचित नहीं होगा।

▶ सहजानुभूति कला होती है

कला के संबंध में प्रचलित इस प्राचीन विचार का क्रोचे खंडन करता है कि कला प्रकृति की अनुकृति है। उनके शब्दों में- "यदि प्रकृति की अनुकृति से यह समझ जाए कि कला प्राकृतिक वस्तुओं की यांत्रिक प्रतिकृतियाँ, लगभग पूर्ण प्रतिलिपियाँ उपस्थित करती हैं। उनके समक्ष उसी प्रकार का भाव उद्वेलन होता है जैसा कि प्राकृतिक वस्तुओं द्वारा तो निःसंदेह यह स्थापना गलत है। मोम की रंगीन पुतलियाँ जो जीवन की नकल करती हैं, जिनके सामने संग्रहालयों में हम अवाक खड़े रहते हैं, सौंदर्यात्मक सहजानुभूतियाँ नहीं उत्पन्न करतीं।" इसलिए उसके विचार से प्रकृति की अनुकृति का वास्तविक अर्थ सहजानुभूति ही है- अर्थात् प्रकृति के स्वरूप का जो बिंब हमारे मस्तिष्क में सहजानुभूति के रूप में उदित होता है, वही कला है।

▶ सहजानुभूति, कला और अभिव्यंजना तीनों पर्यायवाची है

3.4.1.1.3 कला में विषय और शैली की अभिन्नता

क्रोचे अनुभूति और अभिव्यक्ति को एक ही मानता है; सहजानुभूति और अभिव्यंजना-दोनों उसके लिए एक हैं, अतः इसी आधार पर वह कला को विषय-वस्तु और उसकी शैली को भी अभिन्न घोषित करता है। उसकी मान्यता है कि जब कलाकार अपनी सहजानुभूति को अभिव्यंजना का रूप देता है तो उसमें वह नया कुछ भी नहीं जोड़ता शैली के द्वारा वह विषय को प्रस्तुत नहीं करता, अपितु विषय ही शैली के रूप में अवतरित होता है। विषय और शैली में कोई अंतर नहीं है, इसे स्पष्ट करते हुए उसने एक उदाहरण दिया है "like water put into filter, which appears the same and yet different on the other side." अर्थात् जैसे फिल्टर में से पानी छानने पर, किंचित अंतर के साथ वही पुनः प्रकट होता है, ठीक वैसे ही अभिव्यक्त विषय (अर्थात् विषय = शैली) अनुभूत विषय का व्यक्त रूप है।

▶ कला में विषय और शैली की अभिन्नता रहती हैं

3.4.1.4 कला की अखण्डता

क्रोचे जिस प्रकार विषय और शैली में अभिन्नता मानता है, वैसे ही कला के अन्य तत्वों एवं विभिन्न अंगों में भी वह एकता का ही प्रतिपादन करता है। उसके विचार से कला-कृति का विभिन्न तत्वों या विभिन्न अंगों के रूप में विश्लेषण करना सर्वथा अनुचित है। "कलाकृति को हम खंडों में, कविता को दृश्यों, उपाख्यान, उपमाओं व वाक्यों में, एक चित्र को अलग-अलग आकृतियों और वस्तुओं, पृष्ठभूमि, पुरोभूमि आदि में विभक्त करते हैं-यह क्रिया एकता का विरोध करती हुई प्रतीत होती है, इस प्रकार वर्गीकरण कृति को नष्ट कर देता है। जिस प्रकार जीव को हृदय, मस्तिष्क, धमनियों, मांस-पेशियों में बाँट देना जीवित प्राणी को शव में बदल देना है।" इसी प्रकार वह कला की विभिन्न श्रेणियों व कोटियों के निर्धारण का भी विरोध करता है। उसके विचार से जैसे सौंदर्य की कोटियाँ नहीं हो सकतीं वैसे ही कला की भी कोटियाँ नहीं हो सकतीं।

▶ कला का तात्विक या आंगिक विश्लेषण करना कला की हत्या करना है

3.4.1.2 कलाकार के साधन

कला-सृजन की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए क्रोचे कलाकार के लिए चार साधन अपेक्षित मानते हैं। सर्वप्रथम तो उसके पास सजग इच्छा-शक्ति होनी चाहिए, जिससे कि वह सदैव कला-सृजन के लिए प्रस्तुत रहे। दूसरे, उसे कला के माध्यम का ज्ञान होना चाहिए-कला-सृजन के विभिन्न साधनों के उपयोग के ज्ञान एवं अभ्यास के अभाव में कला की सृष्टि में बाधा उपस्थित हो जायेगी। तीसरे, कला-सृजन के आरंभ में कलाकार के लिए चिंतन अपेक्षित है। जब उसे एकाएक किसी कलात्मक विचार की अनुभूति होती है तो वह उसे अभिव्यक्त करने

▶ कलाकार के लिए इच्छा-शक्ति, कला के माध्यम का ज्ञान, चिंतन, पर्याप्त कल्पना-शक्ति आदि चार साधन अपेक्षित मानते हैं

का प्रयास करता है। वह कई प्रकार से अभिव्यक्ति का प्रयत्न करता है। अंत में एकाएक मार्ग खुल जाता है और अभिव्यक्ति का प्रवाह चल पड़ता है। इसी से कलाकार को कला-संबंधी आनंद की अनुभूति होती है। चौथे, कलाकार में पर्याप्त कल्पना-शक्ति होनी चाहिए जिससे कि वह कलात्मक बिंबों की आयोजन हो सके।

3.4.1.3 सामाजिक के लिए अपेक्षित क्षमताएँ

कलाकार की भाँति, सामाजिक के लिए कुछ क्षमताएँ अपेक्षित हैं। क्रोचे के विचार से सामाजिक को कला का आस्वाद प्राप्त करने के लिए उसे कलाकार के दृष्टिकोण से तादात्म्य स्थापित कर लेना चाहिए जिससे कि वह कला-कृति के माध्यम से कलाकार द्वारा अनुभूत कलात्मक बिंबों को पुनः अनुभूत कर सके। इसके लिये उसे जल्दबाजी, सुस्ती, उत्तेजना, बौद्धिक मान्यताओं, व्यक्तिगत सद्भावनाओं से मुक्त होकर कला का अध्ययन या मनन करना चाहिए।

सामाजिक में निहित रुचि कलाकार के स्तर तक उठने में और उसकी आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सहायक होगा। इससे वह कला का अधिक आस्वादन कर सकेगा।

▶ कला सृजन की प्रक्रिया और कला-आस्वादन की प्रक्रिया मूलतः एक ही है

क्रोचे के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि वह कला-सृजन और कला-आस्वादन की प्रक्रिया में कोई अंतर नहीं मानता। दोनों क्रियाएँ एक ही क्रिया के दो रूप हैं। इसलिए जिस मार्ग से चलकर कलाकार वह मंजिल पर पहुँचता है; उसी मंजिल पर सामाजिक भी पहुँचता है।

3.4.1.4 सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति

कोचे के विचार से सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति में गहरा अंतर है। सामान्य अनुभूति के मुख्य दो रूप हैं- (1) सुख और (2) दुःख। सुख-दुःख का संबंध हमारी चार मूलभूत प्रवृत्तियों में से आर्थिक-व्यावहारिक से है। जबकि कला का संबंध सहजानुभूति से है। अतः सामान्य अनुभूति का क्षेत्र ही कला से पृथक सिद्ध होता है। सामान्य जीवन के सुख-दुःख वास्तविक एवं गंभीर होते हैं जबकि कलाजन्य सुख-दुःख अवास्तविक-काल्पनिक एवं ऊपरी होते हैं। इसलिए क्रोचे इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कलाजन्य अनुभूति सामान्य अनुभूति से भिन्न होती है।

▶ सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति में मात्रा का अंतर है

3.4.1.5 कोचे के विचारों का पुनर्विचार

क्रोचे की तर्कपद्धति की यह विशेषता है कि वह किन्हीं दो तत्वों या पदार्थों की किसी एक समानता के आधार पर ही दोनों को अभिन्न घोषित कर देता है। कला-सृजन तथा कलास्वादन की प्रक्रिया को एक बताना ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भोजन पकाना और भोजन खाना-दोनों एक ही हों। साथ ही कवि की प्रतिभा को पाठक की रुचि का पर्याय बताना भी बिलकुल विचित्र-सा लगता है। सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति के अंतर के संबंध में क्रोचे ने परस्पर-विरोधी बातें कही हैं। एक ओर यदि उसने दोनों का क्षेत्र भिन्न माना है, तो दूसरी ओर उसने उनमें अंतर गुणों का नहीं, मात्रा का माना है। इस प्रकार से क्रोचे का अभिव्यंजनावाद विचारों की दृष्टि से विशुद्ध अभिव्यंजनावाद है। वह अपनी बात को इस ढंग से कहता है कि पाठक पढ़कर चौंकता है, सोचता है, उलझता है।

▶ कला का लक्ष्य केवल कला या सौंदर्य मानने वालों की दृष्टि से क्रोचे का महत्व अत्यधिक है

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

क्रोचे की तर्कपद्धति की यह विशेषता है कि वह किन्हीं दो तत्वों या पदार्थों की किसी एक समानता के आधार पर ही दोनों को अभिन्न घोषित कर देता है। एक ही विषय को लेकर अनेक रचनाएँ लिखी जा सकती हैं, किन्तु उनकी शैली में अंतर रहेगा। क्रोचे का यह विचार है कि कला का सात्विक या आंगिक रूप में विश्लेषण करने से वह प्राण-शून्य हो जाती है, डरावना होता हुआ भी सत्य नहीं है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. क्रोचे का अभिव्यंजनावाद/ सहजानुभूति से मतलब क्या है? समझाइए।
2. क्रोचे का आधारभूत दर्शन क्या-क्या हैं?
3. सहजानुभूति और कला के बारे में क्रोचे का मत क्या है?
4. कला में विषय और शैली की अभिन्नता समझाइए।
5. सामाजिक के लिए अपेक्षित क्षमताओं के बारे में टिप्पणी लिखिए।
6. सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति में क्या अंतर है?
7. क्रोचे के मत में कलाकार के लिए अपेक्षित साधन क्या-क्या हैं? समझाइए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत- डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

BLOCK-04

पाश्चात्य काव्य सिद्धांत

Block Content

Unit 1: आधुनिक आलोचना एवं मैथ्यू अर्नोल्ड

Unit 2: टि.एस. इलियट के काव्य सिद्धांत

Unit 3: आइ.ए. रिचार्डस के काव्य सिद्धांत

Unit 4: स्वच्छन्दतावादी कवि-समीक्षक-विलियम वड्सवर्थ, वड्सवर्थ-काव्य भाषा का सिद्धांत

Unit 5: यथार्थवाद, प्रतीकवाद एवं अस्तित्ववाद

इकाई : 1

आधुनिक आलोचना एवं मैथ्यू अर्नोल्ड

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- मैथ्यू अर्नोल्ड के समीक्षा सिद्धांत से परिचित होता है
- एक कवि तथा आलोचक के रूप में मैथ्यू अर्नोल्ड के दृष्टिकोण जानता है
- अर्नोल्ड के विचार में कविता और संस्कृति जान सकता है
- कविता और विज्ञान का संबंध समझता है
- अर्नोल्ड के मत में आलोचना समझता है

Background / पृष्ठभूमि

अर्नोल्ड का समय 19वीं शती था। अंग्रेज़ी- साहित्य के इतिहास में यह युग स्वच्छन्दतावादी आंदोलन का युग था, जिसका नेतृत्व कर रहे थे- कॉलरिज, वर्ड्सवर्थ, शैले आदि। वर्ड्सवर्थ ने अपने प्रसिद्ध कविता संग्रह "लिरीकल बैलेड्स" के द्वितीय संस्करण की भूमिका में परंपरागत शास्त्रवाद के विरुद्ध विद्रोह का स्वर उद्घोषित करते हुए स्वच्छन्दतावाद के आदर्शों की घोषणा की। उन्होंने परंपरागत धारणाओं के विरुद्ध कविता में विचार की अपेक्षा भाव को, नियम की अपेक्षा स्वच्छन्दता को, समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व प्रदान करने की बात कही।

Keywords / मुख्य बिन्दु

समाजशास्त्री, काव्य की कसौटी, स्वच्छन्दतावादी कवि, शाश्वत विषय, आध्यात्मिकता

Discussion / चर्चा

4.1.1 मैथ्यू अर्नोल्ड के समीक्षा सिद्धांत

मैथ्यू अर्नोल्ड

आधुनिक अंग्रेजी समीक्षा के क्षेत्र में मैथ्यू अर्नोल्ड (1822-1888) का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अर्नोल्ड का महत्व एक कवि और समीक्षक के रूप में ही नहीं बल्कि समाजशास्त्री एवं सांस्कृतिक चिंतक के रूप में भी है। उन्होंने कविता, समाज और संस्कृति को एक दूसरे से विच्छिन्न होने से बचाया और तीनों के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित करके अपने युग को एक नयी दृष्टि और दिशा दी। जब साहित्य में सामाजिक मर्यादाओं, नैतिक मूल्यों एवं सांस्कृतिक आदर्शों को ध्वस्त करने लगती हैं तब अपने व्यक्तित्व की महत्ता, विचारों की गंभीरता, चिंतन की सूक्ष्मता एवं अभिव्यंजना की प्रौढ़ता के द्वारा इन समाज-विरोधी प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने में सफल महान आलोचक का अवतरण होता है। ऐसे ही महान आलोचकों की परंपरा में मैथ्यू अर्नोल्ड आते हैं।

▶ कविता, समाज और संस्कृति को एक दूसरे से विच्छिन्न होने से बचाया

4.1.1.1 कवि तथा आलोचक के रूप में मैथ्यू अर्नोल्ड

मैथ्यू अर्नोल्ड का अंग्रेजी में प्रवेश एक कवि के रूप में था। लेकिन आगे चलकर आलोचक रूप में साहित्य में पदार्पण किया। उसने कहा कि- "काव्य और उससे जुड़े सभी प्रश्न मानव जीवन से संबद्ध हैं। मानव जीवन से परे हटकर न तो काव्य का अस्तित्व है और न ही उसकी आलोचना का।" तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार अर्नोल्ड के ये विचार काफी उपयोगी थे, क्योंकि उस समय धर्म और ज्ञान का संघर्ष अपनी चरम सीमा में पहुँच चुका था। विज्ञान की चकाचौंध के कारण संस्कृति, नैतिक मूल्य, धर्म आदि की अवहेलना हो रही थी। अतः इस पतनोन्मुख समाज का उद्धार करना अर्नोल्ड का एकमात्र उद्देश्य था। उन्होंने काव्य को जीवन से जोड़कर एक समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा का विकास किया। वे चाहते थे कि काव्य जीवन को प्रभावित करे। उनका विचार था कि जीवन की गहराई से निकला काव्य न केवल समाज को प्रभावित करेगा, बल्कि उसे दिशा भी देगा। अर्नोल्ड ने काव्य के स्वरूप, काव्य के प्रयोजन, विषय, काव्य और नैतिकता आदि विषयों पर विस्तारपूर्वक चर्चा किया।

▶ पतनोन्मुख समाज का उद्धार करना आलोचना का एकमात्र उद्देश्य

4.1.1.2 काव्य का विषय-चयन

प्रस्तुत युग के स्वच्छन्दतावादी कवि काव्य के विषय को केवल वैयक्तिक अनुभूतियों तक सीमित कर रहे थे। उनके अनुसार काव्य का केवल एक ही विषय है-भाव या अनुभूति जिसे कल्पना के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, किन्तु अर्नोल्ड इस मत का खंडन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि यदि काव्य में केवल भावों की ही व्यंजना की गयी और उनकी परिणति किसी कार्य या क्रिया-कलाप में दिखायी गयी तो ऐसी स्थिति में वह हमें आनंद प्रदान करने की अपेक्षा हमारे हृदय को भाव या वेदना से अभिभूत कर लेगा। उस युग के अनेक आधुनिकतावादी कवि एवं आलोचक इस विचार को प्रचालित करना चाहा कि काव्य का विषय प्राचीन न होकर आधुनिक या समकालीन हों तो वह पाठकों केलिए अधिक आनंद प्रदान करेगा। अर्नोल्ड ने ऐसे विचारकों के मत को उद्धृत करते हुए लिखा है- "एक समझदार आलोचक ने कहा है: जो कवि वास्तव में जनता का ध्यान आकर्षित करना चाहता हो, उसे चाहिए कि वह प्राणहीन अतीत का पल्ला छोड़ दे और महत्वपूर्ण वर्तमान के तथ्यों से-और वर्तमान के महत्व के कारण वे नूतन भी होंगे तथा रोचक भी-अपने विषयों का चयन करें।"

▶ काव्य का केवल एक ही विषय है-भाव या अनुभूति

4.1.1.3 शाश्वत विषय

अर्नोल्ड ने अपने युग की प्रचलित भ्रांतियों का निराकरण करते हुए स्पष्ट किया कि किसी भी काव्य-रचना मानव के महत्वपूर्ण क्रियाकलापों या उसके महान कार्यों के चित्रण से सफल

कृति का रूप प्राप्त करता है। इसके लिए हमें केवल आधुनिक काल या काल-विशेष के विषयों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए अपितु हमें उन शाश्वत विषयों एवं तत्वों की खोज करनी चाहिए जो कि विभिन्न राष्ट्रों की विभिन्न महान कृतियों में समान रूप से उपलब्ध होते हैं। 'जब रचना का आधारभूत कार्य ही शक्तिहीन और प्रभाव-शून्य होगा तो फिर कवि कितनी ही अपनी कला की करामात दिखाए वह अपनी रचना में आनंद का संचार नहीं कर सकता।' अतः सर्वप्रथम तो कवि को उत्कृष्ट कार्य-व्यापार का चयन कर लेना चाहिए।

▶ उत्कृष्ट कार्य-व्यापार का चयन नितांत आवश्यक

अर्नोल्ड के विचार में विषय की प्राचीनता या अर्वाचीनता का काव्य की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं है-महत्व है उसकी उस रागात्मकता का जो कि मानवजाति की शाश्वत वासनाओं पर आधारित होती है। काव्य कृतियों का संबंध हमारी शाश्वत भावनाओं के साम्राज्य से है- यदि वे इन्हें आकर्षित करती हैं तो और सब अपेक्षाएँ स्वतः ही शांत और मौन हो जाती हैं।

▶ काव्य का संबंध शाश्वत भावनाओं से

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मैथ्यू अर्नोल्ड के अनुसार काव्य का लक्ष्य है- सर्व सामान्य को आनंद प्रदान करना। अर्नोल्ड की यह स्थापना भारतीय रस-सिद्धांत के सर्वथा अनुरूप है, जिसके अनुसार काव्य का लक्ष्य रस या आनंद प्रदान करना है और इस आनंद की उपलब्धि के लिए ऐसे स्थायी भावों का चित्रण किया जाता है जो मनुष्य की जन्मजात वासनाओं पर आधारित होते हैं।

▶ काव्य का लक्ष्य है-सर्व सामान्य को आनंद प्रदान करना

4.1.1.4 कविता और संस्कृति

मैथ्यू अर्नोल्ड केवल कवि एवं काव्य-चिंतक ही न थे, अपितु वे अपने युग की सांस्कृतिक परंपरा एवं सामाजिक चेतना के भी सजग व्याख्याता थे। समकालीन समाज में जिस सीमा तक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति हुई है, उसी सीमा तक जीवन में असंतुलन आ गया है। इसका कारण यह है कि विज्ञान के विकास के फलस्वरूप एक ओर तो लोगों के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन आया है और दूसरी ओर भौतिक साधनों एवं मुख्य-सुविधाओं में अभिवृद्धि हुई है। किन्तु भौतिक समृद्धि का लाभ समाज के सभी लोगों को समान रूप में प्राप्त नहीं हुआ। समाज तीन वर्गों में बाँटा गया- उच्चवर्ग, मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग। जहाँ उच्च वर्ग आध्यात्मिकता से विमुख होकर घोर भौतिकतावादी हो गया है तो माध्यम वर्ग अपनी अतृप्त इच्छाओं एवं कुण्ठाओं को लेकर क्षुद्र हो गया है एवं निम्न वर्ग में पाशविकता आ गई है। इस प्रकार समाज के किसी भी वर्ग में उच्चता एवं दिव्यता से युक्त दृष्टिकोण नहीं रह गया है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने भौतिकवादी दृष्टिकोण से जो नयी स्थापनाएँ की है उनके प्रभाव से परंपरागत धार्मिक, दार्शनिक एवं नैतिक मान्यताएँ ध्वस्त हो गयीं। फलस्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास या पतन हो गया। इसी को सांस्कृतिक विघटन या समकालीन अराजकता का नाम दिया गया है।

▶ विज्ञान के विकास के फलस्वरूप लोगों के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन आया

वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप आज का समाज भौतिकता के क्षेत्र में बहुत प्रगति कर गया है, किन्तु फिर भी वह जीवन के उच्च, उदार एवं गंभीर मूल्यों से शून्य है। ऐसी स्थिति में कविता ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों की पुन प्रतिष्ठा की जा सकती है। जैसे, मानवता के शाश्वत मूल्यों से अभिभूत करने वाले और साथ ही वे सशक्त, प्रभावशाली एवं आह्लादकारी गुणों से युक्त रचना ही सांस्कृतिक विघटन की स्थिति का निराकरण कर सकती है।

▶ सांस्कृतिक मूल्यों की पुन प्रतिष्ठा का माध्यम कविता है

4.1.1.5 कविता और विज्ञान

बहुत से आधुनिक चिंतकों का विचार है कि आज के वैज्ञानिक युग में कविता की कोई उपयोगिता नहीं है, किन्तु अर्नोल्ड ने इस विचार का खण्डन किया है। भौतिकता और ऐन्द्रियता जीवन के केवल एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि उसका दूसरा पक्ष सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों से संबंधित है। इस दूसरे पक्ष की पुष्टि विज्ञान के द्वारा नहीं, अपितु कला और काव्य के द्वारा ही संभव है। जीवन की पूर्ण सिद्धि के लिए विज्ञान के साथ-साथ कला और साहित्य की भी अपेक्षा है। काव्य के बिना विज्ञान अधूरा सिद्ध होगा तथा भविष्य में धर्म और दर्शन का स्थान काव्य ग्रहण कर लेगा।

▶ जीवन की पूर्ण सिद्धि के लिए विज्ञान के साथ-साथ कला और साहित्य की भी अपेक्षा है

अर्नोल्ड ने कविता को जीवन की आलोचना घोषित किया है। दूसरे शब्दों में, काव्यगत आलोचना काव्यगत तत्वों और मूल्यों पर आधारित होती है और उसकी शैली भी विशिष्ट होती है। जब तक किसी रचना में काव्यात्मक तत्वों, मूल्यों एवं माध्यमों का अस्तित्व नहीं रहेगा तब तक वह 'कविता' नाम को ही सार्थक नहीं कर सकेगी। किन्तु इतना अवश्य है कि अर्नोल्ड द्वारा प्रस्तुत आदर्श और महान कविता वह होगी जिसमें मानव के महान क्रिया-कलापों का चित्रण काव्यात्मक या आह्लादक शैली में किया जाएगा। अर्नोल्ड कविता के स्तर को नहीं गिरा रहे थे, अपितु उसे वे एक ऐसी भव्य गरिमा एवं औदात्य से मंडित करने का प्रयास कर रहे थे, जिसके कारण कोई भी कविता या काव्य सामान्य स्तर की न रहकर वाल्मीकि, तुलसी एवं प्रेमचंद की रचनाओं के उदात्त स्वरूप को प्राप्त कर ले। स्पष्ट है कि अर्नोल्ड ने अपने समीक्षात्मक मूल्यों के द्वारा कविता को उच्च, उदात्त एवं गौरवपूर्ण प्रतिष्ठित किया।

▶ कविता जीवन की आलोचना

4.1.2 अर्नोल्ड और आलोचना

अर्नोल्ड विक्टोरिया युग का महानतम आलोचक था। आलोचक के रूप में वह आधी शताब्दी तक समूचे अंग्रेजी साहित्य पर प्रभावशाली रहा। अर्नोल्ड के आलोचना सिद्धांत 50 वर्षों तक अंग्रेजी साहित्य को प्रभावित करते रहे। अर्नोल्ड ने केवल व्याख्यात्मक और सैद्धांतिक आलोचना पद्धतियों का विकास किया बल्कि आलोचना के नए प्रतिमान स्थापित किए। अर्नोल्ड के विचार में रचनात्मक साहित्य जीवन की आलोचना है। एक आलोचक के रूप में उसने आवश्यक समझा कि वह जीवन की आलोचना को समाज के सामने रखे और उसे संस्कृति से जोड़े। उनका विचार था कि एक आलोचक का यह कर्तव्य है कि वह संसार के श्रेष्ठ ज्ञान और विचारों को जाने तथा समझे। वह सर्वोत्तम ज्ञान और विचारों का लोगों में प्रसार करे ताकि समाज में सच्ची और नवीन भावनाएँ प्रसारित हो सकें।

▶ आलोचक का यह कर्तव्य है कि वह संसार के श्रेष्ठ ज्ञान और विचारों को पहचानें तथा समझें

4.1.3 अर्नोल्ड के मत में आलोचक के गुण

मैथ्यू अर्नोल्ड के आलोचना सिद्धांत आलोचक में निम्नलिखित तीन गुण अनिवार्य मानता है-

(क) आलोचक पढ़ना चाहिए, समझना चाहिए और वस्तुओं के यथार्थ रूप को देखना चाहिए।

(ख) आलोचक ने जो कुछ सीखा है वह दूसरों तक पहुँचाना है ताकि संसार में उत्तम भावनाओं की धारा प्रभावित हो और संसार में परिवर्तन आए। आलोचक का यह काम धर्म प्रचारक जैसा प्रभावपूर्ण और कर्मठता युक्त होना चाहिए।

(ग) आलोचक को रचनात्मक शक्ति की क्रियाशीलता के लिए उचित वातावरण तैयार करना चाहिए ताकि उसकी आलोचना समाज के लिए मंगलकारी हो सके।

▶ आलोचक का काम धर्म प्रचारक जैसा प्रभावपूर्ण और कर्मठता युक्त होना

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

मैथ्यू अर्नोल्ड के मन में आदर्श आलोचक साहित्य, समाज और संस्कृति-इन तीनों का अधिकारी विद्वान होना चाहिए। उसकी काव्य-चेतना अत्यंत प्रबुद्ध, व्यापक एवं गंभीर होनी चाहिए। उसी स्थिति में वह आलोचना के महान उत्तरदायित्व की पूर्ति करके अपने युग के साहित्य और समाज को स्वस्थ, संतुलित एवं सुचिंतित दिशा की ओर अग्रसर करने में सफल होगा। वे केवल काव्य-चिंतक या काव्यशास्त्रीय विद्वान ही नहीं, उन्हें अपने युग के जीवन, समाज और संस्कृति का सम्यक बोध था जिसके बल पर वे समकालीन साहित्य को नयी दृष्टि एवं नयी दिशा देने में सफल हो सके।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. मैथ्यू अर्नोल्ड के समीक्षा सिद्धांत का परिचय दीजिए।
2. एक कवि तथा आलोचक के रूप में मैथ्यू अर्नोल्ड का स्थान निर्धारित कीजिए।
3. अर्नोल्ड के विचार में कविता और संस्कृति में क्या अंतर है?
4. कविता और विज्ञान के संबंध में क्या अंतर है?
5. अर्नोल्ड के मत में आलोचक के गुण क्या क्या हैं?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास- (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत- डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

टि.एस. इलियट के काव्य सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- टी.एस. इलियट के काव्य-सिद्धांतों से परिचित होता है
- कला संबंधी दृष्टिकोण समझता है
- आलोचना संबंधी स्थापनाएँ जानता है
- समीक्षा एवं समीक्षक का दायित्व समझता है
- इलियट की देन के बारे में जानकारी प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

टी.एस. इलियट 20 वीं शताब्दी के अंग्रेजी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं समीक्षक के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा, विद्वत्ता एवं चिंतन क्षमता के बल पर अंग्रेज़ी समीक्षा को एक नयी दृष्टि और नयी दिशा दी। उनका जन्म अमेरिका में हुआ, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का विकास क्रमशः जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड में हुआ तथा वहीं से उन्होंने अंग्रेजी-भाषा और साहित्य की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त की। इलियट ने व्यवस्थित रूप में कोई समीक्षा संबंधी ग्रन्थ नहीं लिखा और न ही किसी विशेष साहित्य-सिद्धांत का प्रतिपादन विधिवत् किया। उनके समीक्षा संबंधी दृष्टिकोण एवं विचारों की अभिव्यक्ति अलग-अलग लेखों में विश्रृंखलित रूप में ही होती रही किन्तु फिर भी अपने दृष्टिकोण की नूतनता एवं विचारों की मौलिकता के कारण उन्होंने अपने युग के एक श्रेष्ठ समीक्षक का गौरव प्राप्त किया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत, परंपरा की परिकल्पना का सिद्धांत, वस्तुनिष्ट समीकरण का सिद्धांत, नोबल पुरस्कार, समीक्षा पद्धति, स्वतंत्रतावादी दृष्टिकोण

Discussion / चर्चा

इलियट मूलतः कवि थे और उनकी कविताओं का 20 वीं शताब्दी के काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। टी.एस. इलियट ने आलोचना के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण बातें कही हैं किन्तु उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण मौलिक स्थापनाएँ ये तीन मानी जाती हैं- (1) काव्य में आत्माभिव्यक्ति के विचार का विरोध (2) इतिहास एवं परंपरा को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हुए उनके समक्ष व्यक्ति की प्रतिभा को गौण स्थान देना एवं (3) साहित्यिक कृति के मूल्यांकन में उसकी विषयवस्तु एवं उसकी संरचनात्मक व्यवस्था पर तटस्थ या वस्तुपरक दृष्टि से विचार करना।

टी. एस. इलियट

4.2.1 टी. एस. इलियट के प्रमुख सिद्धांत

आधुनिक काल के पाश्चात्य समीक्षकों में साहित्य का नोबल पुरस्कार प्राप्त टी. एस. इलियट का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। इलियट की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'Tradition and Individual Talent' है। इलियट ने समीक्षा के क्षेत्र में अनेक सिद्धांतों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। इनमें प्रमुख हैं-

▶ इलियट के प्रमुख तीन सिद्धांत हैं

1. निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत
2. परंपरा की परिकल्पना का सिद्धांत
3. वस्तुनिष्ट समीकरण का सिद्धांत

4.2.1.1 निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत (व्यक्तिवादिता)

इस सिद्धांत का प्रतिपादन इलियट ने साहित्य में बढ़ती हुई अति व्यक्तिवादिता के विरोध में किया था। 'इलियट' का निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत का प्रतिपादन रोमेंटिक कवियों की व्यक्तिवादिता के विरोध में हुआ। इलियट, एजरा पाउण्ड के विचारों से काफी प्रभावित थे। एजरा पाउण्ड की मान्यता थी कि कवि वैज्ञानिक के समान ही निर्वैयक्तिक और वस्तुनिष्ठ होता है। कवि का कार्य आत्मनिरपेक्ष होता है। इलियट अनेकता में एकता को बाँधने के लिए परंपरा को आवश्यक मानते थे, जो वैयक्तिकता का विरोधी है। वे साहित्य के जीवंत विकास के लिए परंपरा का योग स्वीकार करते थे, जिसके कारण साहित्य में आत्मनिष्ठ तत्व नियंत्रित और वस्तुनिष्ठ प्रमुख हो जाता है।

इलियट ने वस्तुनिष्ठ साहित्य को महत्व दिया तथा कला को निर्वैयक्तिक घोषित किया इलियट का प्रारंभिक विचार था- 'कविता उत्पन्न नहीं की जाती अपितु उत्पन्न हो जाती है।'

▶ वस्तुनिष्ठ साहित्य को महत्व दिया तथा कला को निर्वैयक्तिक घोषित किया

उन्होंने निर्वैयक्तिकता के दो रूप माने हैं -

(क) प्राकृत निर्वैयक्तिकता

(ख) विशिष्ट या प्रौढ़ निर्वैयक्तिकता

4.2.1.2 परंपरा की परिकल्पना का सिद्धांत

स्वछंदतावादी विद्वान कवि की प्रतिभा और अंतःप्रेरणा को ही काव्य-सृजन का मूल मानकर प्रतिभा को दैवी गुण स्वीकार करते थे। इसे ही 'वैयक्तिक काव्य सिद्धांत' कहा गया। इस मान्यता को इलियट ने अपने निबंध 'परंपरा और वैयक्तिक प्रज्ञा' में स्वीकार किया और

▶ इलियट के अनुसार- परंपरा एक बृहत्तर प्रयोग की वस्तु है

कहा "परंपरा के अभाव में कवि छाया मात्र है और उसका कोई अस्तित्व नहीं होता।" उनके अनुसार, "परंपरा अत्यंत ही महत्वपूर्ण वस्तु है, परंपरा को छोड़ देने से हम वर्तमान को भी छोड़ बैठेंगे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि परंपरा के भीतर ही कवि की वैयक्तिक प्रज्ञा की सार्थकता मान्य होनी चाहिए।"

▶ परंपरा का महत्वपूर्ण तत्व इतिहास बोध

परंपरा को पारिभाषित करते हुए उन्होंने कहा कि "इसके अंतर्गत उन सभी स्वाभाविक कार्यों, आदतों, रीति-रिवाजों का समावेश होता है जो स्थान विशेष पर रहने वाले लोगों के सह-संबंध का प्रतिनिधित्व करते हैं। परंपरा के भीतर विशिष्ट धार्मिक आचारों से लेकर आगंतुक के स्वागत की पद्धति और उसको संबोधित करने का ढंग, सब कुछ समाहित है।" इलियट यह मानता है कि परंपरा उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं होती। यह अर्जित की जाती है। वस्तुतः इलियट के लिए परंपरा एक अविच्छिन्न प्रवाह है जो अतीत के सांस्कृतिक-साहित्यिक दाय के उत्तमांश से वर्तमान को समृद्ध करता है। यह अतीत की जीवंत शक्ति है जिससे वर्तमान का निर्माण होता है और भविष्य का अंकुर फूटता है।

4.2.1.3 वस्तुनिष्ट समीकरण का सिद्धांत

▶ वस्तुनिष्ठ समीकरण को विभाव विधान कहा

इलियट की मान्यता है कि भाव संप्रेषण के लिए वस्तुनिष्ठ सह-संबंध (Objective Correlation) आवश्यक है। सरल शब्दों में इलियट के इस वस्तुनिष्ठ समीकरण को विभाव विधान कहा जा सकता है। विभावों का चयन इस रूप में किया जाए कि सहृदय सामाजिक के चित्त में नाटककार के मानस-भाव जाग्रत हो जाए। अमूर्त भावों, संवेगों, विचारों एवं अनुभूतियों के संप्रेषण हेतु कवि को ऐसी वस्तु स्थिति एवं घटना का विन्यास करना चाहिए जिससे उसके भाव वस्तुओं में पर्यवसित होकर पाठक या श्रोता के हृदय में उसी भाव को जाग्रत कर सके।

▶ काव्य की सफलता भावनाओं एवं उनके मूर्त विधान में पूर्ण सामंजस्य है

कवि अपने भावों के मूर्तिकरण के प्रति अधिक सजग और सक्षम होगा और संप्रेषण में उसे उतनी ही सफलता मिलेगी। कवि अपनी संवेदनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त विधान से काम लेकर अमूर्त को मूर्त कर देता है। परिणामतः इन प्रतीकों से ठीक वहीं भावनाएँ श्रोता या पाठक के मन में जाग्रत होती हैं जो कवि के मन में जाग्रत हुई थी। काव्य की सफलता इसी में है कि भावनाओं और उनके मूर्त विधान में पूर्ण सामंजस्य एवं एकरूपता हो।

4.2.2 इलियट की समीक्षा पद्धति

इलियट के प्रभाव के कारण पश्चिम की नई समीक्षा में नई प्रवृतियों का आविर्भाव हुआ। इलियट अभिजात वर्ग में पैदा हुआ था, धर्म और दर्शन का भी उसने गंभीर अध्ययन किया था। इसका यह परिणाम हुआ कि संवेदनात्मक स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए उसने प्राचीन काव्य-भंगिमाओं का सहारा लिया। परंपरा की प्रगति के साथ मेल खाने का उसने प्रयत्न किया। अपनी रचनाओं में उसने आधुनिक जगत को निःसहाय, विश्वासहीन और संस्कृतिविहीन चित्रित किया है। इससे छुटकारा पाने के लिए उसने धर्म का सहारा लिया है। साहित्यिक समीक्षा का आधार उसने एक निश्चित नैतिक और धर्म विज्ञान संबंधी दृष्टिकोण माना है। मैथ्यू अर्नोल्ड की भांति इलियट की आलोचना दृष्टि भी सर्वव्यापक थी। स्पष्टतः आंतरिक असंगतियों के कारण इलियट की काव्य संबंधी मान्यताएँ स्पष्ट रूप में हमारे सामने न आ सकी, फिर भी संसार उनके प्रभाव से अछूता न रहा।

▶ परंपरा की प्रगति के साथ मेल खाने का प्रयत्न

4.2.3 समीक्षा एवं समीक्षक का दायित्व

इलियट ने समीक्षा के लक्ष्य एवं समीक्षक के उत्तरदायित्व पर विचार करते हुए स्पष्ट किया है कि किसी भी रचना की निष्पक्ष एवं तटस्थ समीक्षा राग-द्वेष से मुक्त-निष्पक्ष समीक्षक ही कर सकता है, स्वयं कवि नहीं। कवि तो केवल अपनी कविता के संबंध में कुछ विचार व्यक्त कर सकता है जिनका मूल्य सीमित होता है। निष्पक्षता एवं तटस्थता के अतिरिक्त समीक्षक में सहृदयता अंतर्दृष्टि, विवेक एवं बोध का होना भी आवश्यक है। जब तक समीक्षक में पर्याप्त संवेदनशीलता या अनुभूति की क्षमता न होगी तब तक वह कविता के मर्म का स्पर्श नहीं कर सकेगा। इसके अतिरिक्त समीक्षक का अध्ययन व्यापक और विवेकपूर्ण होना चाहिए। वह काव्य का मर्मज्ञ हो, साहित्य मूल्यों से अवगत हो, किसी प्रकार के पूर्वाग्रह या दुराग्रह से मुक्त हो और साथ ही स्वतन्त्रचेता हो। उसमें अपनी बात स्पष्ट रूप में कहने का साहस भी होना चाहिए।

▶ समीक्षक का कार्य बहुत ही उत्तरदायित्वपूर्ण है

4.2.4 इलियट की देन

- मूलतः इलियट आधुनिक युग के मान्यता प्राप्त कवि के रूप में विख्यात हैं। लेकिन आलोचना जगत में भी उनका स्थान सर्वोच्च है।
- उन्होंने निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत का संशोधित रूप प्रदान की जो भारतीय साधारणीकरण से बहुत कुछ मेल खाता है।
- इलियट के विचार आज के साहित्य और साहित्यकारों के लिए काफी उपयोगी हैं।
- उनके चिंतन में पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के साथ-साथ भारतीय काव्य-सिद्धांतों का मिश्रण एवं प्रभाव दिखाई देता है।
- निष्ठावान कवि एवं विचारकों के लिए उनका निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत आज भी मूल्यवान है।

▶ इलियट की देन

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

इलियट ने वस्तुनिष्ठ साहित्य को महत्व दिया। उनके अनुसार, "परंपरा अत्यंत ही महत्वपूर्ण वस्तु है, परंपरा को छोड़ देने से हम वर्तमान को भी छोड़ बैठेंगे।" इलियट का मत है कि संस्कृति धर्म से भिन्न है यद्यपि वह धर्म द्वारा नियन्त्रित होती है। संस्कृति के निर्माण में कला और साहित्य का योग वे स्वीकारते है। आपके मत में कलाकार को सांस्कृतिक परंपरा का पूर्ण बोध होना चाहिए। मैथ्यू अर्नोल्ड की भांति इलियट की आलोचना दृष्टि भी सर्वव्यापक थी।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. टी.एस. इलियट के काव्य-सिद्धांतों का परिचित दीजिये।
2. इलियट के आलोचना संबंधी स्थापनाएँ क्या-क्या हैं?
3. इलियट के मत में समीक्षा एवं समीक्षक का दायित्व क्या है?
4. इलियट की देन के बारे में टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास- (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत- डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 3

आइ.ए. रिचार्डस के काव्य सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- कला के मूल्य सिद्धांत से परिचय होता है
- काव्य मूल्यों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या समझता है
- संप्रेषण सिद्धांत समझता है
- संप्रेषण और काव्य भाषा के बारे में परिचय प्राप्त करता है
- संप्रेषण सिद्धांत का महत्व जानता है

Background / पृष्ठभूमि

आधुनिक युग के पाश्चात्य समीक्षकों में इंग्लैंड में जन्मे आई.ए. रिचार्ड्स (1893-1979 ई.) का महत्वपूर्ण स्थान है। वे अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान के विद्यार्थी थे तथा हार्वर्ड विश्वविद्यालय के अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। वहीं से उन्होंने डी. लिट्की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने लगभग एक दर्जन ग्रन्थ लिखे जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है- 'Principles of Literary Criticism' अर्थात् 'साहित्य समीक्षा के सिद्धांत'।

Keywords / मुख्य बिन्दु

संप्रेषणीयता, मूल्यवादी सिद्धांत, मनोवैज्ञानिक विवेचन, उद्वेग

Discussion / चर्चा

4.3.1 आई. ए. रिचार्ड्स के काव्य सिद्धांत

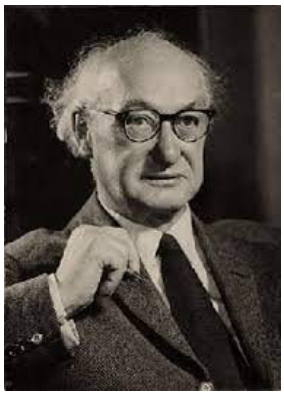

आइ.ए. रिचार्डस

रिचार्ड्स के अनुसार कवि या कलाकार सामान्य की अपेक्षा अधिक प्रतिभा संपन्न व्यक्ति होता है। वह अपनी प्रतिभा और कल्पना की सहायता से मानव के परस्पर विरोधी उद्वेगों को स्थायी संतुलन प्रदान करता है। साधारण व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाता। रिचार्ड्स ने मनोविज्ञान का आधार लेकर काव्य संबंधी दो उल्लेखनीय सिद्धांत दिए:-

1. कला का मूल्यवादी सिद्धांत या मूल्य सिद्धांत
2. संप्रेषणीयता का सिद्धांत

4.3.1.1 मूल्य का मनोवैज्ञानिक विवेचन

किसी भी वस्तु का मूल्यांकन करते समय हमारे मन में पहले ही मूल्य के संबंध में कोई निश्चित धारणा होती है। हम किसी पूर्व निश्चित मानदंड के आधार पर ही वस्तु का मूल्य निर्धारित करते हैं। डॉ. रिचार्ड्स के विचार से हमारी मूल्यांकन संबंधी धारणाओं का संबंध मानसिक उद्वेगों से है। जो वस्तु हमारे उद्वेगों को संतुष्ट करती है, उसी को सामान्यतः मूल्यवान कहा जाता है। ये उद्वेग (Impulses) भी दो प्रकर के होते हैं-

▶ हमारी मूल्यांकन संबंधी धारणाओं का संबंध मानसिक उद्वेगों से है

(1) प्रवृत्ति-मूलक

(2) निवृत्ति-मूलक

प्रेरणाओं की संतुष्टि में न केवल व्यक्ति की अपनी प्रवृत्तियाँ अपितु अन्य व्यक्तियों की प्रेरणाएँ भी बाधक बन सकती हैं। इससे व्यक्तियों में विरोध एवं संघर्ष का आरंभ होता है। इसी विरोध एवं संघर्ष से बचने के लिए समाज में ऐसे नीति-नियमों का विकास हुआ है जिनमें बिना विरोध के ही अधिक से अधिक व्यक्तियों की संतुष्टि हो सके या उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। वह नियम जो समाज के अधिकांश व्यक्तियों को बिना किसी पारस्परिक विरोध के उनकी प्रमुख प्रेरणाओं को तुष्ट करने का विधान करता है वही सबसे अच्छा नियम है, उसी को हम नैतिक नियम कहते हैं। संक्षेप में 'नैतिकता' अच्छा या 'मूल्यवान' का अर्थ है जो 'प्रेरणाओं की तुष्टि में सर्वाधिक सहायक हो'। अर्थात् कोई भी वस्तु जो किसी एक इच्छा को इस प्रकार शान्त करती है कि उसके समान या अधिक महत्वपूर्ण इच्छा का अवरोध नहीं होता-मूल्यवान है।

▶ प्रेरणाओं की संतुष्टि

4.3.1.2 मूल्य का सिद्धांत और साहित्य

मूल्य सिद्धांत को डॉ. रिचार्ड्स साहित्य पर लागू करते हैं। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे सीधे नैतिकता के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन करते हैं। इस संबंध में उनके दृष्टिकोण को अधिक ध्यान से समझना होगा। उनके विचार से समाज और धर्म के सभी नैतिक नियमों, प्रथाओं, अंधविश्वासों आदि के पीछे मूलतः वही इच्छाओं की तुष्टि का लक्ष्य होता है। यद्यपि प्रारंभ में इनका विकास समाज की किसी अवस्था एवं परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार होता है, किन्तु समय के साथ-साथ वे परिस्थितियाँ बदल जाती हैं। ऐसी स्थिति में उन नियमों एवं प्रथाओं को भी बदल जाना चाहिए। परिस्थितियाँ जिस तेज़ी से बदलती हैं, उस तेज़ी से हमारे नैतिक आदर्श एवं नियम नहीं बदलते। परिणाम यह होता है कि हम युग से पिछड़ जाते हैं, हमारी आन्तरिक एवं बाह्य व्यवस्था में व्याघात तथा हमारे जीवन में असंतोष उत्पन्न होता है। "सृजन के क्षणों में कलाकार सर्वोत्तम स्थिति में होता है, काव्य की उपयोगिता भी यही है कि पाठक भी उस मानसिक स्थिति के निकट पहूँचे। रिचार्ड्स

▶ आचार्य रामचंद्र शुक्ल रिचार्ड्स के सिद्धांतों के समर्थक प्रशंसक रहे

ने इसे ही काव्य का मूल्यवान रूप माना है।" आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे ही "हृदय की रसदशा" कहा है।

समाज को अव्यवस्था एवं असंतोष की प्रचण्ड आग से बचाने के लिए परंपरागत आदर्शों एवं मान्यताओं में संशोधन एवं परिवर्तन की गहरी आवश्यकता का अनुभव होता है। यह परिवर्तन कला और साहित्य के द्वारा ही संभव है। इससे हम अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर अग्रसर होते हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप में साहित्य समाज की मान्यताओं के संशोधन में योग देता है। उसके शब्दों में- "कलाकार का काम तो उन अनुभूतियों को अंकित कर देना एवं चिर स्थायी बना देना होता है, जिन्हें वह सबसे अधिक मूल्यवान समझता है। कलाकार वह बिंदु है, जहाँ मन का विकास सुव्यक्त हो उठता है। उसकी अनुभूतियों में कम सामंजस्य लक्षित होता है जो अधिकांश लोगों के मन में अस्त-व्यस्त, परस्पर अंतर्भूत तथा द्वन्द्वरत हुआ करते हैं। जो कुछ अधिकांश लोगों के मन में अव्यवस्थित रूप में विद्यमान होता है, उसकी कृति उसी को व्यवस्था देती है।"

▶ कलाकार का दायित्व सबसे अधिक मूल्यवान

4.3.1.3 संप्रेषणीयता का सिद्धांत

रिचार्ड्स का काव्य संबंधी दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत संप्रेषणीयता का सिद्धांत है। प्रेषणीयता को स्पष्ट करते हुए रिचर्ड्स कहता है- "All that occurs is that under certain conditions seperate minds have closely similar expreiences." अर्थात् प्रेषणीयता में जो कुछ होता है, वह यह है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में विभिन्न मस्तिष्क प्रायः एक जैसी अनुभूति प्राप्त करते हैं। जब किसी वातावरण विशेष से एक व्यक्ति का मस्तिष्क प्रभावित होता है तथा दूसरा उस व्यक्ति की क्रिया से ऐसी अनुभूति प्राप्त करता है कि जो पहले व्यक्ति की अनुभूति के समान होती है, तो उसे प्रेषणीयता कहते हैं। दूसरे शब्दों में किसी अन्य की अनुभूति को अनुभूत करना ही प्रेषणीयता है।

▶ कवि, कलाकार या सर्जक की अनुभूतियों का भावक द्वारा अनुभव किया जाना ही संप्रेषण है

एक की अनुभूति को अन्य सबकी अनुभूति बना देना ही कवि का कौशल है और उसे अन्य तक पहूँचा देना कलाकृति का गुण है अतः कला की प्रेषणीयता अत्यंत आवश्यक है। प्रेषणीयता के आधारभूत तत्वों पर विचार करते हुए रिचार्ड्स ने इसका श्रेय कवि की वर्णन क्षमता और श्रोता या पाठक की ग्रहण शक्ति को दिया है। यदि कलाकार स्वयं अपनी रचना को प्रेषणीय बनाने के लिए प्रयत्न करते रहें, तो संभव है कि उसकी रचना में कृत्रिमता आ जाए। इसलिए रिचार्ड्स यह मानता है कि कला में प्रेषणीयता आवश्यक है, किन्तु कलाकार को इसके लिए विशेष प्रयत्न नहीं करना चाहिए। कलाकार जितना सहज स्वाभाविक रूप में अपना कार्य करेगा उसकी अनुभूतियाँ उतनी ही संप्रेषणीय बनेंगी। इससे प्रेषणीयता में पूर्णता का विधान होता है।

▶ कलाकार स्वयं अपनी रचना को प्रेषणीय बनाने के लिए प्रयत्न करें तो रचना में कृत्रिमता आएंगे

4.3.1.4 संप्रेषण और काव्य भाषा

काव्य में संप्रेषण का प्रमुख माध्यम भाषा है, जिसका प्रयोग अर्थ को सूचित करने के लिए होता है। भाषा में सामान्यतः चार बातें निहित रहती हैं- वाच्यार्थ (Sense), भाव (Feeling) वाणीगत चेष्टा (tone), अभिप्राय (intention)। भाषा से सामान्यतः उपर्युक्त चारों प्रकार के अर्थ सूचित होते हैं, किन्तु विषय एवं परिस्थिति के भेद से इनका अनुपात बदलता रहता है। विज्ञान में वाच्यार्थ का अधिक महत्व होगा तो काव्य में 'भाव' को अधिक महत्ता मिलेगी। कविता विचारों की अभिव्यक्ति के लिए नहीं अपितु भावों के प्रभाव के लिए होती है। काव्य

▶ शब्द के विभिन्न प्रभाव उसके प्रयोग वैशिष्ट्य पर निर्भर होते हैं

में व्यक्त विचार भाव और दृष्टिकोण के निमित्त होते हैं।

काव्यास्वादन की प्रक्रिया द्वारा-काव्य संप्रेषण की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए रिचार्ड्स ने उसे छः भागों में विभक्त किया है:

1. मुद्रित शब्दों का नेत्रों के माध्यम से ग्रहण
2. नेत्रों द्वारा प्राप्त संवेदनाओं से संबंधित बिम्बों का ग्रहण
3. स्वतंत्र बिंबों का ग्रहण
4. विभिन्न वस्तुओं का बोध
5. भाषानुभूति
6. दृष्टिकोण से सामंजस्य

▶ काव्य संप्रेषण की प्रक्रिया

4.3.1.5 संप्रेषण सिद्धांत का महत्व

1. रिचार्ड्स काव्य का मूल्यांकन रागात्मक आधार पर करते हैं और पाठकों के मन पर पड़े प्रभावों से उसे आंकते हैं।
2. रस सिद्धांत में स्थायी भाव की सत्ता 'वासना रूप में विद्यमान' भावों के रूप में की गई है, जबकि रिचार्ड्स आदिम आवेगों (Impulses) की सत्ता को स्वीकार करता है।
3. रस सिद्धांत में जहाँ भिन्न-भिन्न रसों की चर्चा की गई है, वहीं रिचार्ड्स ने विरोधी आवेगों को स्वीकार किया है।
4. रिचार्ड्स का संप्रेषण सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र में वर्णित साधारणीकरण के समीप है।
5. रिचार्ड्स ने काव्य भाषा का जो विवेचन किया है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे यह मानते हैं कि भाषा का प्रयोग भाव की प्रेरणा से होता है।
6. भाषा में लहजा (tone) विशेष महत्वपूर्ण है जिसका आधार संबंध न होकर भाव दशा है। क्रोध की दशा में हमारा 'टोन' जिस प्रकार का होता है वैसा 'प्रेम' की दशा में नहीं होता।
7. रिचार्ड्स ने भाषा के जो तीन भेद-भाव, लहजा और अभिप्राय किए हैं, वे वास्तव में अर्थ के तीन भेद न होकर एक-दूसरे के अंग हैं। इनकी तुलना में भारतीय आचार्यों ने शब्द और उसकी शक्तियों के जो भेद अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के रूप में किए वे अधिक तर्कसंगत हैं।
8. रिचार्ड्स ने भारतीय रस सिद्धांत और उससे प्राप्त होने वाले आनंद को उतना महत्व नहीं दिया। उनकी मान्यता है कि काव्य से प्राप्त होने वाला तात्कालिक आनंद सर्वथा गौण है। यह मान्यता उनके प्रेषणीयता सिद्धांत के विपरीत है।
9. रिचार्ड्स की आधारभूत मान्यताएँ तो महत्वपूर्ण हैं, किन्तु उनकी व्याख्या अटपटी एवं अपूर्ण है।

▶ संप्रेषण सिद्धांत का महत्व

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

रिचार्ड्स के काव्य सिद्धांतों ने अपने युग के समीक्षकों को बहुत अधिक आकर्षित किया है। उन्होंने साहित्य का एक ऐसा मानदंड खोजने का प्रयास किया जो भाषा विज्ञान, मनोविज्ञान एवं नीतिशास्त्र के तत्वों से समन्वित है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. कला का मूल्यवादी सिद्धांत या मूल्य सिद्धांत का परिचय दीजिए।
2. काव्य मूल्यों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या पर लेख लिखिए।
3. संप्रेषण सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
4. संप्रेषण सिद्धांत का महत्व स्पष्ट कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास - (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत- डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 4

स्वच्छन्दतावादी कवि-समीक्षक-विलियम वड्सवर्थ, वड्सवर्थ-काव्य भाषा का सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- स्वच्छंदवाद और वर्ड्सवर्थ का योगदान समझता है
- काव्यभाषा के सिद्धांत से परिचय होता है
- वड्सवर्थ की काव्यभाषा के सिद्धांत से परिचय होता है
- काव्यभाषा के गुण समझता है

Background / पृष्ठभूमि

स्वच्छंदतावादी (अंग्रेज़ी-Romanticism) कला, साहित्य तथा बौद्धिक क्षेत्र का एक आन्दोलन था जो यूरोप में अठारहवीं शताब्दी के अंत में आरंभ हुआ। 1800-1850 तक के काल में यह आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था। स्वच्छंदतावादी (रोमांटिक) युग में पूरे यूरोप में महत्वपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, तकनीकी, दार्शनिक एवं साहित्यिक परिवर्तन हुए। यह दौर पश्चिमी जगत के लिए क्रांतियों का दौर था। अंग्रेजी साहित्य में वर्ड्सवर्थ इसके प्रमुख कवि एवं आलोचकों में से एक थे।

Keywords / मुख्य बिन्दु

स्वच्छंदतावाद, रोमांटिक आन्दोलन, शिल्पगत बदलाव, काव्यभाषा-सिद्धांत, काव्यभाषा और साधारण भाषा, लिरिकल बैलेड्स

Discussion / चर्चा

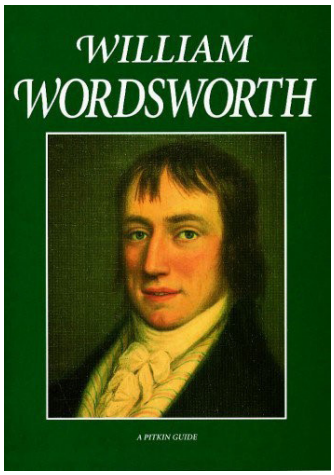

4.4.1 स्वच्छन्दतावादी कवि-समीक्षक-विलियम वड्सवर्थ

अंग्रेजी साहित्यकार वर्ड्सवर्थ ने विभेदवादी आधुनिकता एवं करुणविहीन औद्योगिक पूँजीवाद से उपजी सभ्यता के सापेक्ष स्वच्छन्दतावादी ज्ञानमीमांसा का प्रस्ताव किया। वर्ड्सवर्थ ने कविता में अभिजन एवं उसकी रूढ़ियों के स्थान पर जनसामान्य एवं उसकी भाषा तथा प्रकृति की प्रतिष्ठा की है। यह तर्क-बुद्धि आधारित सभ्यता का प्रतिसंसार था जिसमें बुद्धि केबजाय हृदय को महत्ता मिली हुई थी। इस चिंतन धारा ने प्रकृति को एक नई अर्थ प्रदान की। अब प्रकृति आलंकारिक उपकरण नहीं बल्कि 'मनुष्य को धरती माता से बाँधने वाली शक्ति के रूप में थी, जो उसे पहाड़ियों और आकाश से ढँकती थी तथा मिलों की चिमनियों, कारखानों और शहर के मलिन से त्राण देती थी। वर्ड्सवर्थ की वैकल्पिक विश्वदृष्टि में प्रकृति और मनुष्य के बीच अभिन्नता की अपेक्षा थी।

▶ इस चिंतन धारा ने प्रकृति को एक नई अर्थ प्रदान की

4.4.1.1 स्वच्छंदतावाद और वर्ड्सवर्थ का योगदान

स्वच्छंदतावाद एक वैश्विक साहित्यिक घटना थी। यह अलग-अलग देशों में अलग-अलग कालखंडों में घटित हुई। रूढ़ि, जड़ता और ठकराव के खिलाफ हृदय को आत्मप्रसार का अवसर स्वच्छंदतावाद से मिलता है। अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन को रोमेटिंक आन्दोलन के रूप में जाने जाते हैं। वर्ड्सवर्थ इसके प्रमुख वक्ता थे। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का कालखंड 1798 ई. से सन् 1835 ई. है। यही काल वर्ड्सवर्थ की रचनाओं का भी है। वर्ड्सवर्थ ने अपनी कविताओं और समीक्षात्मक टिप्पणियों के माध्यम से स्वच्छन्दतावाद की साहित्य जगत में एक पहचान दिलायी। वर्ड्सवर्थ में कविता को जनसामान्य के लिए बताया और सामान्य भाषा में कविता रचने का प्रस्ताव करते हैं। ध्यान देने की बात है कि स्वच्छन्तावाद सिर्फ शिल्पगत बदलाव नहीं है। इसमें दुनिया को वैकल्पिक नज़रिए से देखने का प्रस्ताव निहित है।

▶ स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन, रोमेटिंक आन्दोलन के रूप में जाने जाते हैं

4.4.1.2 काव्यभाषा का सिद्धांत

वर्ड्सवर्थ का मत है कि-

1. काव्य में जनसाधारण की भाषा का प्रयोग होना चाहिए। ग्रामीण जीवन में मनुष्य के भाव सरल निष्कपट सच्चे होते हैं तथा प्रकृति के निरंतर संपर्क से विकसित होते हैं इसलिए उनमें तादात्म्य सुगम होता है।
2. गद्य और पद्य की भाषा में तात्विक भेद नहीं होता।
3. प्राचीन कवियों का भावाबोध जितना सरल था, उनकी भाषा उतनी ही सहज थी। भाषिक कृत्रिमता और आडंबर उत्तरकालीन कवियों की देन है।

▶ काव्य भाषा गाँवों में प्रयुक्त जनसाधारण की भाषा

वर्ड्सवर्थ ने काव्यभाषा के विषय में अपना एक निश्चित मत प्रस्तुत किया। उनकी मान्यता थी कि कविता की भाषा जन-साधारण की भाषा (ग्रामीण भाषा) होनी चाहिए। दाँते ने काव्य में ग्रामीण भाषा के प्रयोग को हेय माना। बाद के कवियों ने भी इसका समर्थन किया। अभिजात्य भाषा और बोल-चाल की भाषा का यह द्वन्द्व पुराना है। इस द्वन्द्व को वर्ड्सवर्थ ने 'लिरिकल बैलेड्स' के द्वारा पुनः विचारों का केन्द्र बनाया। 18 वीं सदी के नव अभिजात्यवाद में भाषा के दो रूप प्रचलित थे। उच्च भाषा जिसे संस्कृत मानव की भाषा मानते थे तथा निम्न भाषा जो साधारण जनों की भाषा थी। कालान्तर में उच्च भाषा कृत्रिम और दुर्बोध होती चली गई। इसीलिए भाषा के त्याग और ग्रामीण भाषा के प्रयोग पर वर्ड्सवर्थ ने बल दिया।

▶ 'लिरिकल बैलेड्स' में ग्रामीण भाषा के प्रयोग पर बल दिया

4.4.1.3 वड्सवर्थ की काव्यभाषा का सिद्धांत

काव्य की भाषा कैसी हो, इस विषय में वड्सवर्थ ने अपनी राय प्रकट की। संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्य कुन्तक ने 'रीति' को काव्य की आत्मा मान लिया था। उन्होंने रीति को विशिष्ट पद-रचना अर्थात् भाषा का विशिष्ट रूप बतलाया। वास्तव में काव्य का आरम्भ सभी देशों में विशिष्ट जनों की नहीं, अपितु जन- सामान्य की भाषा के माध्यम से होता है। जिस तीव्र गति से जीवन और जीवन की भाषा में परिवर्तन होता है, उस गति से साहित्य और साहित्य की भाषा में परिवर्तन नहीं होता।

▶ काव्य का आरम्भ सभी देशों में जन- सामान्य की भाषा के माध्यम से

वर्ड्सवर्थ का स्वर अपने युग की ऐसी ही रीतिबद्धता के प्रति विद्रोही रूप में व्यक्त हुआ था। वर्ड्सवर्थ रीतिबद्धता को अस्वाभाविक मानते थे। उनका कथन था कि "मैंने कई ऐसे अभिव्यंजना-प्रयोगों को जो स्वतः उचित और सुन्दर हैं, बचाया है, क्योंकि निम्न कोटि के कवियों ने उनका इतना अधिक प्रयोग बार-बार किया है कि उनके प्रति ऐसी अरुचि उत्पन्न हो गयी है कि उसे किसी कला के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है।"

▶ वर्ड्सवर्थ रीतिबद्धता को अस्वाभाविक मानते थे

वर्ड्सवर्थ ने मनुष्यों की वास्तविक भाषा का स्वरूप भी स्पष्ट किया है। वास्तव में मनुष्यों की वास्तविक भाषा से उनका तात्पर्य उसे भाषा से था जो भावों और विचारों के साथ स्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई हो और उन भावों और विचारों को सहज रूप से व्यक्त कर सके। साधारण भाषा का अर्थ वर्ड्सवर्थ ने तुच्छ भाषा के रूप में नहीं माना। वर्ड्सवर्थ ने प्रारंभिक काव्यभाषा और साधारण भाषा का अंतर भी स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि प्रारंभ में काव्य की भाषा और साधारण भाषा में अंतर था। इसका एक अन्य कारण भी था। उसमें छन्द का योग पहले से ही हो चला था। यही कारण था कि उसके द्वारा लोग वास्तविक जीवन की भाषा की अपेक्षा अधिक प्रभावित होने लगे थे। प्रभाव का यह कारण अर्थात् छन्द, उनके वास्तविक जीवन से भिन्न था। बाद के कवियों ने इसका दुरुपयोग करना आरम्भ कर दिया। कालान्तर में छन्द इस असाधारण भाषा का प्रतीक बन गया।

▶ प्रारंभिक काव्यभाषा और साधारण भाषा का अंतर

जब किसी ने छन्द में लिखना आरम्भ किया, तब उसने अपनी प्रतिभा और सामर्थ्य के अनुसार उस शुद्ध और प्रारंभिक भाषा में अपनी भाषा मिला दी। इस प्रकार एक नवीन भाषा बन गयी जो मनुष्यों की वास्तविक भाषा नहीं रह गयी थी। वर्ड्सवर्थ ने काव्यभाषा के विवेचन के अन्त में यह विचार व्यक्त किया है कि "कल्पना और भाव की कृतियों की एक और केवल एक भाषा होनी चाहिए, चाहे वे कृतियाँ गद्य में हो या पद्य में। छन्द इस प्रकार की कृतियों के लिए ऊपरी अथवा आकस्मिक तत्व होते हैं।"

▶ साहित्य केवल एक ही भाषा में होनी चाहिए, चाहे वे कृतियाँ गद्य में हो या पद्य

4.4.1.4 काव्यभाषा के गुण

वर्ड्सवर्थ ने जिस प्रकार काव्य की वस्तु साधारण जीवन से ली है, उसी प्रकार उसने भाषा भी वहीं से ग्रहण की है। उनकी दृष्टि में भाषा में भी कुछ गुण अपेक्षित होते हैं। इस संबंध में उन्होंने लिखा है कि 'इन मनुष्यों का संपर्क उन सर्वोत्तम वस्तुओं से रहता है, जिनसे भाषा का सर्वोत्तम अंश उपलब्ध होता है। अपने सामाजिक स्तर और अपने परिचय की संकीर्ण परिधि तथा समानता के कारण वे सामाजिक कृत्रिम प्रदर्शनों के वश में अपेक्षाकृत कम रहते हैं। इसके कारण वे अपनी अनुभूतियों और विचारों को सहज रूप से व्यक्त करते हैं।

▶ अनुभूतियों और विचारों को सहज रूप से व्यक्त करते हैं

डॉ. कृष्णदेव शर्मा ने वर्ड्सवर्थ की काव्यभाषा एवं शैली के विषय में अपने विचार प्रकट

▶ डॉ. कृष्णदेव शर्मा ने वर्ड्सवर्थ की काव्यभाषा एवं शैली के विषय में अपने विचार प्रकट की है

करते हुए लिखा है कि "वर्ड्सवर्थ ने प्रचलित शैली और रूढ़ भाषा को अनुपयोगी मानकर उसका विकास व्यक्तिवाद और भावात्मकता के आधार पर किया। उन्होंने परंपरागत शैली को विकृत, विरूप, मिश्रित तथा भावहीन माना।"

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

टी. एस. इलियट की तरह वर्ड्सवर्थ ने भी सामान्य भाषा को अधिक उपादेय माना और उसी का समर्थन किया। वर्ड्सवर्थ से पूर्व कृत्रिम भाषा के लिए जो नियम-उपनियम बनाये गये थे, वर्ड्सवर्थ उनके विरुद्ध थे। विशिष्ट काव्यगत उक्तियों, मानवीकरण और वक्रोक्ति आदि के वे विरोधी थे। समग्रतः वे कृत्रिमता तथा सीमित काव्य-रूपों को मान्यता देने के विरुद्ध थे।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. स्वच्छंदतावादी आलोचना में वड्सवर्थ के योगदान पर टिप्पणी लिखिए।
2. काव्यभाषा पर वर्ड्सवर्थ की संकल्पना पर आलेख लिखिए।
3. वड्सवर्थ की काव्यभाषा के सिद्धांत की परिचय दीजिये।
4. वड्सवर्थ के मत में काव्यभाषा के गुण क्या-क्या हैं?
5. वड्सवर्थ की काव्यभाषा के संबध में जो विचार है, उस पर टिप्पणी लिखिए

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास- (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 5

यथार्थवाद, प्रतीकवाद एवं अस्तित्ववाद

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- यथार्थवाद : स्वरूप एवं प्रवृतियाँ समझता है
- प्रतीकवाद : स्वरूप एवं प्रवृतियाँ जानता है
- अस्तित्ववाद : स्वरूप एवं प्रवृत्तियों से परिचय होता है
- अस्तित्ववाद के प्रवर्तकों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- अस्तित्ववाद की आधारभूत धारणाएँ और प्रवृत्तियाँ समझता है

Background / पृष्ठभूमि

यथार्थवाद का अंग्रेजी रूपांतरण Realism है। Realism का अर्थ है कि बाह्य जगत मिथ्या नहीं वरन सत्य है। यथार्थवाद के अनुसार जगत विचारों पर आश्रित नहीं है। इसके अनुसार हमारा अनुभव स्वतंत्र होकर बाह्य पदार्थों के प्रति प्रतिक्रिया का निर्धारण करता है। यथार्थवादियों के मतानुसार केवल प्रत्यक्ष जगत जिसे हम देखते सुनते या अनुभव करते हैं वही सत्य है अर्थात् यह भौतिक संसार ही सत्य हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

यथार्थवाद, वैयक्तिकता, प्रतीकवाद, अस्तित्ववाद, मनोविज्ञान, सौंदर्य-शास्त्र, साधारणीकरण

Discussion / चर्चा

4.5.1 यथार्थवाद : स्वरूप एवं प्रवृतियाँ

साहित्यिक यथार्थवाद, व्यापक यथार्थवादी आंदोलन का हिस्सा था जो उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस में स्वच्छंदतावाद की प्रतिक्रिया के रूप में शुरू हुआ था। यह बीसवीं सदी की शुरुआत तक जारी रहा। यथार्थवाद वास्तविक दुनिया पर ध्यान केंद्रित करने की पद्धति है।

4.5.1.1 यथार्थवाद : स्वरूप

'यथार्थवाद' का शाब्दिक अर्थ है- जो वस्तु जैसी हो, उसे उसी अर्थ में ग्रहण करना है। दर्शन, मनोविज्ञान, सौंदर्य-शास्त्र, कला एवं साहित्य के क्षेत्र में वह विशेष दृष्टिकोण, जो सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल को, काल्पनिक की अपेक्षा वास्तविक को, भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को, सुंदर के स्थान पर कुरूप को, आदर्श के स्थान पर यथार्थ को ग्रहण करता है- यथार्थवादी दृष्टिकोण कहलाता है। राजनीति के क्षेत्र में आदर्श और यथार्थ दोनों को स्थान प्राप्त है।

▶ जो वस्तु जैसी हो, उसे उसी अर्थ में ग्रहण करना 'यथार्थवाद' का अर्थ है

जहाँ गांधीजी का 'राम-राज्य' आदर्शवादिता का प्रतीक है, वहाँ मार्क्स की साम्यवादी व्यवस्था विशुद्ध यथार्थवादी दृष्टिकोण को लेकर चलती है। सौंदर्य-शास्त्र के क्षेत्र में दोनों वर्ग के विद्वान मिलते हैं।

▶ यथार्थवादी साहित्यकारों को आदर्शवादिता से संबंधित तत्वों का आश्रय लेना पड़ता है

साहित्य के मूल तत्व चार माने गए हैं-भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली। इनमें से भाव और कल्पना का संबंध आदर्श से है, जबकि शेष दो का यथार्थ से। कोई भी साहित्यकार चाहे वह कितना यथार्थवादी क्यों न हो, बिना कल्पना के पंखों पर सवार हुए भाव-जगत का भ्रमण नहीं कर सकता। अतः किसी-न-किसी स्तर पर यथार्थवादी साहित्यकारों को भी आदर्शवादिता से संबंधित तत्वों का आश्रय लेना पड़ता है। दूसरी ओर कोरे आदर्शों की सृष्टि करने वाला साहित्य, जो मानव को देवता के रूप में उपस्थित करता है, धरती को स्वर्ग में परिणत कर देता है। साहित्यकार का मार्ग आदर्श और यथार्थ की पटरियों को छूते हुए आगे बढ़ना है।

4.5.1.2 यथार्थवादी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

किसी भी रचना को 'आदर्शवादी' श्रेणी में रखा जाए या यथार्थवाद की कोटि में-इसका निर्णय करने के लिए उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन करना आवश्यक है। यथार्थवादी रचना में निम्नलिखित प्रवृतियाँ सामान्यतः होती हैं:-

(क) यथार्थवादी कलाकार- 'जीवन क्या है?' का उत्तर देता है। वह 'क्या होना चाहिए?' की समस्या में नहीं पड़ता है।

(ख) यथार्थवादी रचना में अतीत और भविष्य की अपेक्षा वर्तमान का चित्रण अधिक होता है।

(ग) यथार्थवादी रचना में जीवन विसंगतियों, कटुताओं एवं विषमताओं का चित्रण होता है।

(घ) यथार्थवादी रचना में परिस्थितियों का मानव पर प्रभाव बताया जाता है, जबकि आदर्शवादी में मानव परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

(ङ) यथार्थवादी केवल समस्या प्रस्तुत करता है, उसका समाधान आदर्शवादी करता है।

(च) यथार्थवादी में वैयक्तिकता अधिक होती है, जबकि आदर्शवादी में सामाजिकता।

(छ) यथार्थवदी शैली में स्वाभाविकता, तीव्रता, व्यंग्यात्मकता अधिक होती है, जबकि आदर्शवादी में काल्पनिकता, शिथिलता और कोमलता का वेग होता है।

(ज) यथार्थवादी साहित्य में रौद्र, बीभत्स एवं श्रृंगार की अभिव्यक्ति अधिक होती है, जबकि आदर्शवादी में करुणा, वीर और शान्त की।

▶ यथार्थवादी रचना में अतीत और भविष्य की अपेक्षा वर्तमान का चित्रण अधिक

ये प्रवृत्तियाँ सामान्य रूप में ही बताई गई हैं, किन्तु अनेक स्थानों पर इनका अपवाद भी मिलता है। ऐसी स्थिति से प्रवृत्तियों की बहुलता के आधार पर दोनों का निर्णय करना उचित होगा।

4.5.1.3 प्रतीकवाद : स्वरूप

श्री रामचन्द्र वर्मा ने 'प्रामाणिक हिन्दी (शब्द) कोश' में 'प्रतीक' शब्द के ये अर्थ दिये हैं- (1) चिह्न, लक्षण, निशान; (2) मुख मुँह; (3) आकृति या रूप या सूरत; (4) किसी के स्थान पर या बदले में रखी हुई या काम आने वाली वस्तु; (5) प्रतिमा, मूर्ति; (6) वह

जो किसी समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में और उसकी सब बातों का सूचक या प्रतिनिधि हो (सिम्बल symbol)। अर्थों की यह विविधता ही 'प्रतीक' शब्द की व्यापकता सिद्ध करती है। हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग भी विभिन्न प्रकार से होता है। हमारे सामाजिक या राष्ट्रीय जीवन में हमारे गौरव का सूचक कोई रंग, आकृति या चिह्न प्रतीक कहलाता है; जैसे किसी संस्था का व्यापारिक चिह्न, किसी समाज को कोई मुद्रा या किसी राष्ट्र की ध्वजा-पताका, कोई रंग या आकार। धार्मिक क्षेत्र में पत्थर या धातु-मूर्तियों किसी परम सत्ता की प्रतीक के रूप में पूजा की जाती हैं। इसी प्रकार साहित्य-क्षेत्र में किसी भाव या विचार का प्रतिनिधित्व करने वाले शब्द 'प्रतीक' कहलाते हैं।

▶ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग विभिन्न प्रकार से करते हैं

4.5.1.4 प्रतीकवाद : प्रवृतियाँ

1. बाह्य जगत के यथार्थ का तिरस्कारः प्रतीकवादियों ने बाह्य जगत की घटनाओं, वस्तुओं या व्यक्तियों को क्षुद्र तथा महत्वहीन माना। उनके अनुसार इनकी अपेक्षा मनुष्य की आंतरिक संवेदनाएँ तथा अनुभव अधिक महत्वपूर्ण होते हैं और कला में इन्हीं को अभिव्यक्ति मिलनी चाहिए। सामान्य मानवीय संवेदनाओं तथा अनुभवों के अतिरिक्त अति-प्राकृत तत्वों, अनुभवों / और दार्शनिक तथा आध्यात्मिक प्रत्ययों को भी इन्होंने कला का विषय माना। प्रतीकवाद ने बाहरी यथार्थ को और भी अनेक प्रकार से नकारा।

▶ प्रतीकवादियों ने आतरिक संवेदना एवं अनभव को अधिक महत्व दिया

2. प्रतीक की आवश्यकताः इस सिद्धांत के अनुसार मानवीय मनोभाव तथा संवेग जटिल तथा व्यक्ति-विशिष्ट होते हैं। अतिप्राकृत अनुभवों को सामान्य यथार्थवादी भाषा तथा वर्णनों के माध्यम से संप्रेषित नहीं किया जा सकता। इनकी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का इस्तेमाल जरूरी है। प्रतीकवादियों ने मिथकों का भी बड़े पैमाने पर प्रयोग किया।

▶ प्रतीकवादियों ने मिथकों का भी प्रयोग किया

3. वस्तु का प्रतीक में अंतरणः प्रतीकवादियों ने बाहरी यथार्थ की अपेक्षा अंतर के यथार्थ को अधिक महत्व दिया। दिलचस्प बात यह है कि उस अमूर्त सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने मूर्त जगत की वस्तुओं का उपयोग किया लेकिन प्रतीकों के रूप में। वस्तुगत वर्णन तथा मूर्त व्यापारों के चित्रण का उन्होंने विरोध किया।

▶ वस्तुगत वर्णन तथा मूर्त व्यापारों के चित्रण

4. प्रतीक का स्वरूप : रचनाकार की अभिव्यंजन के विषय तथा प्रतीक के बीच पूर्ण सादृश्य नहीं होता। यह रचनाकार के ऊपर है कि वह कब किस वस्तु को किस भाव के प्रतीक के तौर पर इस्तेमाल करता है।

▶ रचनाकार के ऊपर है कि किस तौर पर इस्तेमाल करेगा

5. समाज तथा नैतिकता के नियमों की अस्वीकृति : प्रतीकवादियों ने काव्य की वस्तु के रूप में यथार्थ को तो अस्वीकार किया। साथ ही समाज तथा नैतिकता से साहित्य के संबंध को भी इन्होंने स्वीकार नहीं किया। इसका एक कारण तो यह था कि समाजधर्मिता भी बाह्य जगत से जुड़ी अवधारणा है।

▶ समाजधर्मिता भी बाह्य जगत से जुड़ी अवधारणा है

6. साहित्य के रूपः मुख्य रूप से कविता और कुछ सीमा तक नाटक प्रतीकवादियों की प्रमुख विधाएँ थीं। किंतु इनमें भी इन्होंने परंपरा को स्वीकार नहीं किया। कविता में इन्होंने तुकांतता का विरोध किया। साहित्य के लिए ये चूँकि व्यंजना को बहुत महत्वपूर्ण मानते थे, इसलिए कविता की विशिष्ट लय तथा शब्दों की ध्वनि के माध्यम से अपने कथ्य को संप्रेषित करने पर इनका विशेष बल था। इसीलिए इनकी रचनाएँ मुख्यतः प्रगीतात्मक (गाना) रही।

▶ कविता में तुकांतता का विरोध किया

7. भाषा : प्रतीकवादियों के मत में यथार्थवादी, अभिधापरक भाषा अभिव्यक्ति का उपयुक्त माध्यम नहीं बन सकती। भाषा में इंद्रियातीत, अगम्य अनुभवों तथा स्थितियों की

▶ भाषा में शब्दों के साथ शब्द-ध्वनियों का व्यंजक प्रयोग करते है

अभिव्यक्ति की क्षमता होनी चाहिए और इस प्रकार की व्यंजना वह तभी कर सकती है जब शब्दों को उनके परिचित सामान्य अर्थ-संदर्भों से काट दिया जाए। भाषा में शब्दों के साथ ही ये कवि सामान्य या विशिष्ट शब्द-ध्वनियों का भी व्यंजक प्रयोग करते हैं।

4.5.1.5 अस्तित्ववाद स्वरूप

▶ उन्नीसवीं शताब्दी में मानव जीवन पर वैज्ञानिकता एवं सामाजिकता का अधिक प्रभाव

अस्तित्ववाद एक ऐसी विचारधारा है जो 19 वीं और 20 वीं शताब्दी के दौरान सामने आई। इसके मूल में आधुनिकता की यह दृष्टि निहित थी कि एक मनुष्य वैयक्तिक(Individual) रूप में सोचता, विचारता, अनुभव करता और अपना जीवन जीता है। डॉ. गणपति चंद्र गुप्त अस्तित्ववाद के बारे में लिखते हैं- "जब उन्नीसवीं शताब्दी में विभिन्न प्रकार के आविष्कारों एवं सिद्धांतों के प्रचलन के कारण मानव जीवन पर वैज्ञानिकता एवं सामाजिकता का प्रभाव अधिक बढ़ने लगा, जिसके सम्मुख व्यक्ति की वैयक्तिकता एवं स्वतंत्रता उपेक्षित होने लगी, तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप एक ऐसे वाद का विकास हुआ, जो कि वैयक्तिक स्वतंत्रता को सर्वाधिक महत्व देता हुआ वैज्ञानिकता एवं सामाजिकता का तीव्र विरोध करता है। यही वाद दर्शन एवं कला के क्षेत्र में अस्तित्ववाद के नाम से प्रसिद्ध है।"

अस्तित्ववाद की प्रवृत्तियाँ

▶ अस्तित्ववाद एक मानवतावादी दर्शन

1. अस्तित्ववाद व्यक्तिगत स्वच्छन्दता पर बल देता है।
2. अस्तित्ववाद एक मानवतावादी दर्शन है।
3. अस्तित्ववाद जीवन की निरर्थकता मानता है।
4. अस्तित्ववाद मृत्यु-बोध की मान्यता में यकीन करता है।
5. अस्तित्ववाद मानव-स्थिति को पीड़ाजनक मानता है।
6. अस्तित्ववादी दर्शन में निराशा का महत्वपूर्ण स्थान है।
7. अस्तित्ववाद में नैतिकता और उत्तरदायित्व की भावना पायी जाती है।

4.5.1.6 अस्तित्ववाद के प्रवर्तक

अस्तित्ववाद का आरंभ जर्मनी में से माना जाता हैं। इस दर्शन को विकसित करने में सारेन कीर्केगार्द, ग्रेबियल मार्शल, नीत्शे, मार्टिन हेडेगर, कार्ल जैस्पर्स, आल्बर्ट कामू व ज्यां पाल सार्त्र का नाम प्रमुख हैं। अस्तित्ववाद के प्रमुख विचारक थेः-

सारेन कीर्केगार्द-

कीर्केगार्द को अस्तित्ववाद का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होंने ईश्वर की सत्ता को माना है। मगर कीर्केगार्द ने श्रद्धा को मनुष्य की आंतरिक वस्तु स्वीकार किया। उन्होंने निराशा को भी महत्व दिया। इनके दर्शन में आत्मनिष्ठा भी विद्यमान है। मनुष्य के अकेलेपन को सबसे पहले इन्होंने ही अनुभव किया।

कार्ल जैस्पर्स

कार्ल जैस्पर्स को आधुनिक अस्तित्ववाद का प्रवर्तक माना गया। साथ ही उन्हें 'तर्क का दार्शनिक' भी माना जाता है। उन्होंने व्यक्ति के आंतरिक अस्तित्व को ही स्वतंत्र रूप में स्वीकार किया है। मनुष्य को बौद्धिक, भौतिक व ऐतिहासिक बंधनों में बंधा हुआ माना तथा कर्म को महत्व दिया।

आल्बर्ट कामू

कामू ने स्वतंत्रता, भाईचारे व सौहार्द को महत्व दिया। उन्हें विसंगति का दार्शनिक माना गया। विसंगति से बचने के लिए विद्रोह जरूरी माना है। वह मानवीय मूल्यों, नैतिक मूल्यों, कर्म पर विश्वास करते थे। इतिहास को सृजित करने की बात भी वह स्वीकारते हैं।

ज्यां पाल सार्त्र

ज्यां पाल सार्त्र का नाम अस्तित्ववादियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सार्त्र अस्तित्व को सार से पहले मानते हैं। स्वतंत्रता, कर्म को महत्ता प्रदान की। उनका मानना था कि व्यक्ति वही है जैसा वह स्वयं को बनाता है। मृत्यु को सभी संभावनाओं का अंत माना। सार्त् ईश्वर को अस्वीकार करते हैं उनका मानना था कि ईश्वर के होने न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

दॉस्तोवस्की

दॉस्तोवस्की में स्वतंत्रता, अकेलापन व वैयक्तिकता देखने को मिलती है। वह समाजवाद के समर्थक थे तथा क्रांति को 'अराजकता' के समान माना।

फ्रेंज काफ्का

▶ अस्तित्ववाद के प्रमुख विचारक

फ्रेंज काफ्का का साहित्य महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता, संघर्ष, अलगाव व प्रेम का चित्रण इनके साहित्य में हुआ है। ये अलगाव का विरोध करते हैं। इसके अलावा हुर्सेल, बर्दिएफ आदि अस्तित्ववादी चिंतकों में महत्वपूर्ण है।

4.5.1.7 अस्तित्ववाद की आधारभूत धारणाएँ

- अस्तित्ववादी विचारधारा का आधारभूत शब्द 'अस्तित्व' है, जो अंग्रेजी के Existence का पर्याय है।
- इसके बाद के अनुयायी विचार या प्रत्यय की अपेक्षा व्यक्ति के अस्तित्व को अधिक महत्व देते हैं- इसी को अस्तित्ववादी कहलाते हैं।
- व्यक्ति का अस्तित्व ही प्रमुख है जबकि विचार या सिद्धांत गौण हैं।
- व्यक्ति अपने लिए जो चुनता है, वही उसे मिलता है। लेकिन प्रत्येक स्थिति में यह व्यक्ति का ही चुनाव है कि वह परिस्थितियों के अनुकूल बनता है या प्रतिकूल- इसके लिए किसी अन्य को दोष देना व्यर्थ है।
- अस्तित्ववादी के अनुसार व्यक्ति को अपने अस्तित्व का बोध दुःख या त्रास की स्थिति में ही होता है, अतः उसे इस स्थिति का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।
- आत्मस्वातंत्र्य की रक्षा के हित प्राप्त दुःख, चाहे वह कितना ही दारुण क्यों न हो, दासता एवं परतंत्र्य की छाया में प्राप्त सुख से हज़ार गुना अच्छा होता है- वह अस्तित्ववादियों का अटल विश्वास है।

▶ व्यक्ति को अपने अस्तित्व का बोध दुःख या त्रास की स्थिति में ही होता है

- सच्चा अस्तित्व उसी व्यक्ति का है, जो परिस्थितियों को कुचलता हुआ अपने मार्ग या दिशा में निरंतर आगे बढ़ता है। वेदना का भोग अस्तित्ववाद का दूसरा प्रमुख सिद्धांत है, जिस पर अस्तित्व-बोध का प्रथम सिद्धांत निर्भर है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

यथार्थवाद उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस में स्वच्छंदतावाद की प्रतिक्रिया के रूप में शुरू हुआ। राजनीति के क्षेत्र में आदर्श और यथार्थ दोनों को स्थान प्राप्त है। यथार्थवादी रचना में जीवन असंगतियों, कटुताओं एवं विषमताओं का चित्रण होता है। हमारे सामाजिक या राष्ट्रीय जीवन में हमारे गौरव का सूचक कोई रंग, आकृति या चिह्न प्रतीक कहलाता है। अस्तित्ववाद में नैतिकता और उत्तरदायित्व की भावना पायी जाती है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. प्रतीकवाद स्वरूप एवं प्रवृतियों पर लेख तैयार करें।
2. अस्तित्ववाद स्वरूप एवं प्रवृत्तियों पर टिप्पणी लिखिए।
3. अस्तित्ववाद पर आलेख तैयार कीजिए।
4. यथार्थवाद पर टिप्पणी लिखिए।
5. अस्तित्ववाद की प्रवृत्तियों पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. काव्य के रूप - गुलाबराय
2. भारतीय और पश्चिमी काव्य शास्त्र - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
3. नई समीक्षा : नए संदर्भ - डॉ. नगेंद्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास- (संपा.) नगेंद्र
6. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - डॉ. निर्मला जैन
7. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत- डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
8. पश्चिम काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. नगेंद्र
9. पश्चिम काव्यशास्त्र सिद्धांत और संप्रदाय - डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. काव्य दर्पण - रामदरश मिश्र
2. काव्य प्रदीप - रामबिहारी मिश्र
3. काव्यांग विवेचन - भगीरथ मिश्र
4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. भारतीय काव्य - सत्यदेव
6. काव्य शास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

Model Question Paper Sets

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ……

Reg. No : …….....
Name : ……...

SECOND SEMESTER MA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE - M23HD05DC- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

(CBCS - PG)
2023-24 - Admission Onwards

Time: 3 Hours **Max Marks: 70**

SECTION A

I. किन्हीं पाँच प्रश्नों का उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

1. काव्य गुण क्या-क्या है?
2. अभिनवगुप्त की अभिव्यक्तिवाद पर प्रकाश डालिए।
3. रीति दोष क्या क्या है? व्यक्त कीजिए।
4. आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति के कितने भेद स्वीकार किए हैं? वह कौन कौन से हैं?
5. प्लेटो के राजनीतिक विचार क्या है?
6. औदात्य के लक्षण क्या-क्या है?
7. कवि के रूप में मैथ्यू अर्नोल्ड की परिचय दीजिए।
8. यथार्थवाद माने क्या है? **(5X2 = 10 Marks)**

SECTION B

II. किन्हीं छः प्रश्नों का उत्तर एक पृष्ठ के अन्दर लिखिए।

9. अनुमीतिवाद का परिचय दीजिए।
10. भरतमुनि की रससूत्र की व्याख्या दीजिए।
11. अलंकार संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों का परिचय दीजिए।
12. शब्द शक्तियों के प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
13. औचित्य के भेदों पर प्रकाश डालिए।
14. अरस्तू के काव्य सिद्धांत प्रस्तुत कीजिए।
15. क्रोचे के अभिव्यंजनावाद से क्या मतलब है?
16. इलियट के मत में समीक्षा एवं समीक्षक का दायित्व क्या है?
17. वर्ड्सवर्थ के प्रकृति-चित्रण पर टिप्पणी लिखिए। **(6X5 = 30 Marks)**

SGOU

SECTION C

III. किन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर लिखिए। प्रत्येक उत्तर तीन पृष्ठों के अन्तर्गत हों।

18. भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास पर प्रकाश डालिए।
19. अलंकार संप्रदाय पर टिप्पणी लिखिए।
20. प्लेटो की साहित्य संबंधी विचारों को व्यक्त कीजिए।
21. टी.एस. इलियट के काव्य सिद्धांतों का परिचय देते हुए उनकी आलोचना संबंधी स्थापनाएँ व्यक्त कीजिए।

(2X15 = 30 Marks)

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ……

Reg. No : …….....
Name : ……...

SECOND SEMESTER MA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE - M23HD05DC- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र

(CBCS - PG)
2023-24 - Admission Onwards

Time: 3 Hours **Max Marks: 70**

SECTION A

I. किन्हीं पाँच प्रश्नों का उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

1. रस की विशेषताएँ क्या-क्या है?
2. अलंकार के संबंध में विभिन्न आचार्यों द्वारा दिए गए परिभाषाओं को व्यक्त कीजिए।
3. ध्वनि के आधार पर काव्य के कितने भेद है? वह कौन-कौन सा है?
4. औचित्य के भेदों पर प्रकाश डालिए?
5. अरस्तू के विरेचन सिद्धांत पर चर्चा कीजिए।
6. क्रोचे के अनुसार सहजानुभूति का क्या मतलब है?
7. संप्रेषणीयता के सिद्धांत का महत्व क्या है?
8. अस्तित्ववाद के प्रवर्तक कौन-कौन हैं? **(5X2 = 10 Marks)**

SECTION B

II. किन्हीं छः प्रश्नों का उत्तर एक पृष्ठ के अन्दर लिखिए।

9. काव्य प्रयोजन पर टिप्पणी लिखिए।
10. साधारणीकरण की अवधारणा प्रस्तुत कीजिए।
11. रीति भेदों का परिचय दीजिए।
12. वक्रोक्ति सिद्धांत पर टिप्पणी लिखिए।
13. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के इतिहास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
14. औदात्य के पाँच स्रोतों पर प्रकाश डालिए।
15. मैथ्यू अर्नोल्ड के विचार में कविता और संस्कृति में क्या अंतर है?
16. रिचार्ड्स ने मनोविज्ञान का आधार लेकर काव्य संबंधी दो उल्लेखनीय सिद्धांत दिए। उन दोनों सिद्धांतों का विस्तृत परिचय दीजिए।
17. 'प्रतीकवाद' की प्रवृत्तियाँ क्या-क्या है? **(6X5 = 30 Marks)**

SECTION C

III. किन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर लिखिए। प्रत्येक उत्तर तीन पृष्ठों के अन्तर्गत हों।

18. रस सिद्धांत का परिचय देते हुए विभिन्न विद्वानों के मतों पर टिप्पणी लिखिए।
19. औचित्य संप्रदाय और उसके सिद्धांतों पर चर्चा कीजिए।
20. लोंजाइनस के औदात्य सिद्धांत पर आलेख लिखिए।
21. स्वच्छंदतावादी आलोचना में वर्ड्सवर्थ के योगदान पर टिप्पणी लिखिए। **(2X15 = 30 Marks)**

SGOU

SGOU

സർവ്വകലാശാലാഗീതം

വിദ്യയാൽ സ്വതന്ത്രരാകണം
വിശ്വപൗരരായി മാറണം
ഗ്രഹപ്രസാദമായ് വിളങ്ങണം
ഗുരുപ്രകാശമേ നയിക്കണേ

കൂരിരുട്ടിൽ നിന്നു ഞങ്ങളെ
സൂര്യവീഥിയിൽ തെളിക്കണം
സ്നേഹദീപ്തിയായ് വിളങ്ങണം
നീതിവൈജയന്തി പാറണം

ശാസ്ത്രവ്യാപ്തിയെന്നുമേകണം
ജാതിഭേദമാകെ മാറണം
ബോധരശ്മിയിൽ തിളങ്ങുവാൻ
ജ്ഞാനകേന്ദ്രമേ ജ്വലിക്കണേ

കുരീപ്പുഴ ശ്രീകുമാർ

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Regional Centres

Kozhikode
Govt. Arts and Science College
Meenchantha, Kozhikode,
Kerala, Pin: 673002
Ph: 04952920228
email: rckdirector@sgou.ac.in

Thalassery
Govt. Brennen College
Dharmadam, Thalassery,
Kannur, Pin: 670106
Ph: 04902990494
email: rctdirector@sgou.ac.in

Tripunithura
Govt. College
Tripunithura, Ernakulam,
Kerala, Pin: 682301
Ph: 04842927436
email: rcedirector@sgou.ac.in

Pattambi
Sree Neelakanta Govt. Sanskrit College
Pattambi, Palakkad,
Kerala, Pin: 679303
Ph: 04662912009
email: rcpdirector@sgou.ac.in

भारतीय एवं पाश്ചात्य काव्यशास्त्र

Course Code: M23HD05DC

SGOU

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

ISBN 978-81-971189-3-7

Sreenarayanaguru Open University
Kollam, Kerala Pin- 691601, email: info@sgou.ac.in, www.sgou.ac.in Ph: +91 474 2966841